THE GROWTH OF FEMINISM IN THE NOVELS OF USHA PRIYAMVADA

उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में स्त्री स्वत्व का विकास

By

S. ANITHA

एस. अनिता

A Thesis submitted to the Avinashilingam
Institute for Home Science and Higher Education for Women
(Deemed University) Coimbatore - 641 043.
In partial fulfillment of the requirements for the Degree of

MASTER OF PHILOSOPHY IN HINDI

April, 2004.

CERTIFICATE

This is to certify that the Thesis entitled **"THE GROWTH OF FEMINISM IN THE NOVELS OF USHA PRIYAMVADA"** submitted to Avinashilingam Institute for Home Science and Higher Education for Women (Deemed University), Coimbatore, in partial fulfillment of the requirements for the award of **MASTER OF PHILOSOPHY IN HINDI** is a record of original research work done by Mrs. S. ANITHA, during the period of her study in the Department of Hindi, Avinashilingam Institute for Home Science and Higher Education for Women (Deemed University), Coimbatore, under my supervision and guidance and the thesis has not formed the basis for the award of any Degree/Diploma/Associateship/Fellowship or other similar title to any candidate of any other university.

Signature of the Guide

Forwarded

Date :

Signature of the Head of the Department

DECLARATION

I hereby declare that the thesis entitled **"THE GROWTH OF FEMINISM IN THE NOVELS OF USHA PRIYAMVADA"**, submitted to Avinashilingam Institute for Home Science and Higher Education for Women (Deemed University), Coimbatore in partial fulfilment of the award of the Degree of **MASTER OF PHILOSOPHY IN HINDI** is a record of original research work done by me under the supervision and Guidance of **Dr. Smt. SHOBANA KOKKADAN** M.A., M.Phil., Ph.D. (Hindi), Reader, Department of Hindi, Avinashilingam Institute for Home Science and Higher Education for Women (Deemed University), Coimbatore and that it has not formed the basis for the award of any Degree/Diploma/ Associateship/Fellowship or other similar title to any candidates of any other university.

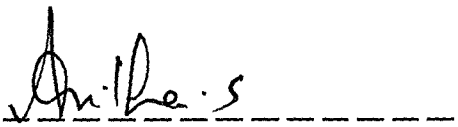

Forwarded

Signature of the Candidate

Date :

Signature of the Head of the Department

आभार प्रदर्शन

अविनाशिलिंगम विश्वविद्यालय कोयम्बत्तूर की स्वर्गीय कुलाधिपति महोदया पद्मश्री डॉ. श्रीमती. राजम्माल देवदास, एम.ए., एम.एस.सी., पी.एच.डी., डी.एस.सी., (मद्रास), डी.एच.एल. (ओरिगन स्टेट), डी.एच.एल. (ओहियो स्टेट), डी.एस.सी. (आज़ाद कृषि विश्वविद्यालय, कानपुर), माननीय कुलाधिपति डॉ. कुलन्दैवेल जी; एम.ए., एम.ए. (ओहियो स्टेट) पी.एच.डी. (मद्रास), एवं कुलपति डॉ. (श्रीमती) एम. चन्द्रमणि जी; एम.एस.सी. (बरोडा), एम.एड, पी.एच.डी (मद्रास) के प्रति मैं सर्वप्रथम अपना आभार प्रदर्शन करती हूँ, जिन्होंने मुझे इस विश्वविद्यालय में एम.फिल. कोर्स में प्रवेश दिलाते हुए इस शोध कार्य को करने का सुअवसर दिया । हमारी कुलसचिव डॉ. (श्रीमती) सरोजा प्रभाकरन जी; एम.ए., डिप. एड. (मद्रास), पी.एच.डी. (मदर तेरेसा) को भी मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ ।

अपनी संकायाध्यक्षा डॉ. श्यामला विशवानंदम, एम.ए. (नागपुर), डिप. एजुकेशन, पी. एच.डी. (मद्रास) एवं विभागाध्यक्षा डॉ. (श्रीमती) सु. नागलक्ष्मी जी; एम.ए. (हिन्दी), एम.ए. (अर्थनीति), एम.फिल, पि.एच.डी (मद्रास) के प्रति मैं आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे प्रोत्साहन दिया।

मेरी निर्देशिका डॉ. शोभना कोक्कडन जी, एम.ए. (गांधीजी), एम.फिल. (मद्रास), पी.एच.डी. (कोच्चिन), को हार्दिक धन्यवाद देती हूँ, जिनके मार्गदर्शन ने मुझे हर कदम पर प्रोत्साहित किया है । मेरा शोध कार्य पूरा करने में आपने पूरी सहायता एवं अपना बहुमूल्य समय प्रदान किया । उनके प्रोत्साहन से ही मुझे इस कार्य में पूरी सफलता मिली । उनके प्रति मैं बहुत आभारी हूँ ।

कोच्चिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ. अरविन्दाक्षन और कालडी संस्कृत विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. पी. रवि. का भी मैं आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे सहयोग दिया।

अंत में साफ–सुथरे और समय पर कंप्यूटर कार्य संपन्न करके श्री. राघवन जी ने मुझे भरपूर सहायता की, उनके प्रति भी धन्यवाद देती हूँ।

★★★

प्राक्कथन

उपन्यास मानव जीवन का समग्र रूप में चित्रण करनेवाला सशक्त माध्यम है। हिंदी उपन्यास अपने जन्म काल से ही समाज की गतिविधियों को अपना विषय बनाता आ रहा है। उपन्यास आधुनिक युग की उपज है।

नारी मानव जीवन का प्रमुख अंग है। समय के साथ सामाजिक परिवेश भी बदलता है। इस परिवर्तन के साथ समाज में होनेवाले मानव के जीवन में भी अंतर होते है। खासकर समाज का यह परिवर्तन नारी जीवन में अधिक दिखाई देता है। बदलते समय एवं सामाजिक परिवेश के साथ उपन्यासों में चित्रित नारी के स्वरूप मे भी परिवर्तन देख सकते है।

आज की नारी अपनी स्थिति से अवगत है। अपनी सीमा व सामर्थ्य पहचानकर वह अपनी लक्ष्य प्राप्ति के लिए संघर्षरत है। वह दबाव या विवशता से मुक्त होकर अर्थोपार्जन कर रही है। आर्थिक स्वावलंबन ने उसे आत्मविश्वास दिया है। परंपरा के चार दीवारों के बाहर वह एक नये जीवन की प्रतीक्षा कर रही है। उपन्यास क्षेत्र में महिला लेखिकाओं के पदार्पण ने बडी मात्रा में नारी के पुनर्जागरण में बहुत योगदान दिया है। नारी–पुरुष के बदलते संबंध, नारी के तनाव, चटपटाहट और उसकी विवशता को महिला उपन्यासकारों में सूक्ष्म एवं मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। इनमें उषा प्रियंवदा का नाम सर्वप्रथम है।

उषाजी ने मध्यवर्गीय अन्तर्द्वन्द्व और नारी स्वत्व को समग्र रूप से परखा है। इसीलिए मैंने अपने शोध का विषय, "उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में स्त्री स्वत्व का विकास" (पचपन खम्भे लाल दीवारें, रुकोगी नहीं राधिका, शेष यात्रा) के संदर्भ में चुना है।

अध्ययन एवं विश्लेषण की सुविधा के लिए प्रस्तुत लघु शोध–प्रबन्ध को पाँच अध्ययायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय में उषा प्रियंवदाजी के व्यक्तित्व और कृतित्व, हिन्दी उपन्यास में नारी, उपन्यास में नई दिशा बोध–प्रेमचन्द, स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में नारी की प्रतिमा, हिंदी उपन्यास में चित्रित नारी की समस्याएँ आदि विषयों के बारे में दृष्टिपात किया गया है।

द्वितीय अध्याय में उषाजी के उपन्यास 'पचपन खम्भे लाल दीवारे' के संदर्भ में पारिवारिक संबन्धों से उलझी नारी स्वत्व का चित्रण विशेषतः नायिका ''सुषमा'' के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। कामकाजी महिला की भूमिका ने परिवार में उसे कुछ सम्मान दिया है और कुछ मानसिक संताप। कहीं कहीं वह अपनी पहचान खोकर परिवार के निकट, रुपया कमाने की मशीन मात्र बन गई है।

तृतीय अध्याय में ''पुरुष वर्चस्व से मुक्त होने की छटपटाहट'', ''रुकोगी नहीं राधिका'' उपन्यास के संदर्भ में व्यक्त किया गया है। आधुनिक नारी आत्मनिर्भर बनने की दृष्टि से अर्थोपार्जन करने लगी है। और उसने यह भी समझा है कि जीवन का सुख और स्वातन्त्र्य अभिव्यक्ति अर्थोपार्जन करने या केरियर बनाने में है। यहाँ नारी अपनी स्वत्व का उपयोग केरियर बनाने में करती है। इसीलिए वह परंपरा, संस्कार, नैतिक मान्यताओं को तर्क के आलोक में देखती है।

चतुर्थ अध्याय में उषाजी के उपन्यास 'शेष यात्रा' के संदर्भ में ''स्त्री स्वत्व का रूपायन'' कैसे और किस हद तक हुआ पाया है। इससे सम्बन्धित अन्य विषयों की भी चर्चा हुई है याने स्वतन्त्रता और निजता में अधिक विश्वास, मानव–मूल्यों में विकास की दृष्टि से मनुष्य का स्वतन्त्र विकास अनिवार्य है। आधुनिक जीवन के अनेक नवीन आयामों को सशक्त रूप में उद्‌घाटित किया है।

पंचम अध्याय में उपसंहार है जिसमें पिछले चारों अध्यायों को संक्षिप्त रूप में विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

मेरा यह अध्ययन लघु प्रयास है। यदि उषा प्रियंवदा जैसी महिला उपन्यासकारों की कृतियों पर कोई शोध करना चाहे और मेरे इस शोध कार्य से उनको थोड़ी–सी भी सहायता मिल सकें तो मैं अपने को कृतार्थ समझूँगी।

★★★

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

अध्याय : 1 उषा प्रियंवदा : व्यक्तित्व और कृतित्व 1–23

1.1 जीवन रेखा

1.2 व्यक्तित्व

1.3. कृतित्व

1.4. हिन्दी उपन्यास में नारी

1.4.1. उपन्यास–नई दिशा बोध–प्रेमचन्द

1.4.2.1. स्वातंत्रयोत्तर हिंदी उपन्यास में नारी की प्रतिमा

1.4.3.1. हिंदी उपन्यासों में चित्रित नारी की समस्याएँ

1.5. निष्कर्ष

अध्याय : 2 : पचपन खम्भे लाल दीवारें–पारिवारिक संबधों से उलझी नारी स्वत्व 24–47

2.1 पचपन लाल दीवारें – कथावस्तु

2.1.1. नायिका सुषमा की भूमिका

2.1.2. परिवार में पिता के दायित्व निभानेवाली पुत्री– दायित्व के बहाने

2.1.3. कामकाजी पुत्री और आश्रित परिवार – सहानुभूति के बहाने

2.2. आधुनिक नारी की समस्याएँ – ''पचपन खम्भे लाल दीवारें'' के संदर्भ में

2.2.1. अकेलेपन की समस्या

पृष्ठ संख्या

2.2.2. अविवाहिता नारी की समस्या

2.2.3. प्रेम सम्बन्धी समस्याएँ

2.2.4. आर्थिक समस्या

2.2.5 नौकरी पेश नारी की समस्या

2.3. निष्कर्ष

अध्याय : 3 रुकोगी नहीं राधिका: पुरुष वर्चस्व से मुक्त होने की छटपटाहट 48–69

3.1 परंपरागत आदर्श रूप तथा आधुनिक नारी

3.2. परिस्थितियों के बदलाव के फलस्वरूप नारी की विचारधारा में परिवर्तन

3.3. रुकोगी नहीं राधिका : कथावस्तु

3.4. नायिका राधिका की भूमिका

3.4.1. जड़ परंपरा का स्नेहपूर्ण तिरस्कार

3.4.2. पाश्चात्य शिक्षा और खुली दृष्टि

3.4.3. निजस्व की खोज

3.4.4. अस्तित्वबोध

3.4.5. अस्तित्व रूपों की टूटन और आक्रोश

3.5. रुकोगी नहीं राधिका : समस्याएँ

3.5.1. निराशा और विवशता

3.5.2. अनमेल तथा विवाह विच्छेद

पृ. सं

3.5.3. नौकरी पेशा नारी की समस्याएँ

3.5.4. रूढिमुक्ति की अधूरी यात्रा

3.5.5. हीन भावना से पीडित नारी

3.5.6. संतुलित जीवन दर्शन की ओर

3.6 निष्कर्ष

अध्याय : 4 शेष यात्रा – स्त्री स्वत्व का रूपायन 70–89

4.1. इतिहास के आइने में स्त्री

4.2. शेष यात्राः कथावस्तु

4.3. नायिका अनुका की भूमिका

4.4. अस्मिता का विकासमान रूप

4.4.1. प्रेम

4.4.2. वैवाहिक जीवन

4.4.3. जिजीविषा

4.5 शेष यात्रा : समस्याएँ

4.5.1. साँस्कृतिक समस्याएँ

4.5.2. आर्थिक समस्याएँ

4.5.3. अकेलेपन की समस्या

4.5.4. दाम्पत्य–जीवन से सम्बद्ध विभिन्न समस्याएँ

4.6. निष्कर्ष

अध्याय : 5 उपसंहार 90–100

प्रथम अध्याय

उषा प्रियंवदा - व्यक्तित्व और कृतित्व

उषा प्रियंवदा - व्यक्तित्व और कृतित्व

1.1. जीवन रेखा :

आधुनिक महिला लेखिकाओं में अपने अनुभव संसार की विशिष्टता और अभिव्यक्ति की कलात्मकता के कारण उषा प्रियंवदा अलग से पहचानी जाती है। उनकी जीवन दृष्टि व्यक्तिवादी है। एक व्यक्ति के रूप में नारी की निज समस्याओं का स्वरूप लेखिका ने निवृत्त किया है। भारतीय नारी की नये बदले हुए परिवेश में प्रतिष्ठित करके उसके अत्तर्मन की परख करने में उषा प्रियंवदा की निपुणता जरूर प्रशंसनीय है। उन्होंने आधुनिक नारी की दुविधा को विशेषकर उसके कटेपन को उसके अकेलेपन और अजनबीपन को हमारे सम्मुख खोलकर दिखाया है। उनकी रचनाओं में आधुनिकता बोध उजागर होता है। कृति पर कृतिकार के जीवन और व्यक्तित्व का प्रभाव अवश्य ही पड़ता है। उषाजी का साहित्य भी अपने जीवन और परिवेश से अलग नहीं है।

उषा प्रियंवदा का जन्म 24 दिसम्बर 1931 को उत्तर प्रदेश के कानपुर नामक नगर में हुआ। इनके पिता स्वर्गीय श्री दामोदर प्रसाद सक्सेना थे। प्रियंवदाजी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अँग्रेजी साहित्य में एम.ए. और पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। इसके पश्चात् यें कहीं पर अँग्रेजी विभाग में अध्यापिका नियुक्त हो गई। बाद में वे इलाहाबाद छोडकर दिल्ली आई और उन्होंने लेडी श्रीराम कॉलेज में उत्साह से अँग्रेजी पढ़ाना शुरु किया। तीन साल तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय और दिल्ली के लेडी श्रीराम कॉलेज में प्राध्यापन के बाद उषा प्रियंवदा ने फुलब्राइट स्कॉलरशिप पर अमेरिका प्रस्थान किया और वहाँ ब्लूमिंगटण इण्डियाना में दो वर्ष पोस्ट डॉक्टोरल स्टडी की। अमेरिका में ही उन्होंने

भाषा–विद् श्रीकिम विलसन के साथ विवाह किया। आजकल उषाजी अमेरिका में विस्कांसिन विश्वविद्यालय में दक्षिण एशियाई विभाग में प्रोफेसर है। उषाजी की अपनी कहानी 'वापसी' के लिए और 'नई कहानियाँ' का 1960 ई. का सर्वश्रेष्ठ कहानी पुरस्कार प्राप्त हुआ है। उन्हें हिन्दी, अँग्रेजी, उर्दु आदि भाषाओं का ज्ञान है।

1.2. व्यक्तित्व :

उषा प्रियंवदा ने अपनी कहानी संग्रह 'मेरी प्रिय कहानियाँ' की भूमिका में व्यक्त किया है कि उनके विचार में विदेशी वातावरण ने उनके अकेलेपन और अजनबीपन को मुखर किया है। वैसे ही वे एक बहुत 'प्राइवेट परसन है' और गहरे मित्र बनाने में उन्हें समय लगता है। शायद उनके पात्रों के अकेलेपन में भी उनकी इस दृष्टि और प्रवृत्ति का प्रभाव आ जाता है।

1.3. कृतित्व :

आधुनिक हिन्दी साहित्य जगत में उषा प्रियंवदा कहानिकार और उपन्यासकार के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुकी है। उनकी कृतियों में तकनीक गौण है, लेकिन अनुभव इतना खरा और पैना उतरता है कि तकनीक की बात उठाना जरूरी नहीं लगता। उषाजी उन लेखिकाओं में से है जिन्होंने ईमानदारी से आधुनिकता को स्वीकारा है। जीवन के यथार्थ और अनुभुत सत्यों को अभिव्यक्त करने में उन्होंने जिस साहस का परिचय दिया है वह सहज नहीं है। उषाजी ने एक कृतिकार की ईमानदारी के साथ जीवनानुभव की प्रमाणिकता को कथा में उतारते हुए वर्जित सत्यों को भी सहजता के

साथ प्रस्तुत किया है। नारी की बदलती हुई मान्यताओं, विश्वासों और परिस्थितियों को, पुरुष लेखकों की अपेक्षा अधिक सही धरातल पर प्रस्तुत करने में उषा प्रियंवदा ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

उषा प्रियंवदा की रचनाओं का प्रमुख कथ्य नारी मन की आलोचना है। नारी के विविध स्वरूपों को अनावृत करके उसके जीवन की समस्याओं की ओर उन्होंने इशारा किया है। परिवर्तित संदर्भ, नई परिस्थितियों तथा उलझनपूर्ण मनस्थितियों में नारी के मिसफिट होने की प्रवृत्ति और आधुनिकता तथा भारतीय संस्कारों के मध्यम सूक्ष्म द्वन्द्व को उन्होंने चित्रित करने का प्रयास किया है।

उषा प्रियंवदा ने कॉलेज के दिनों में ही लिखना प्रारंभ कर दिया था। उनके अनुसार पहले ही उनकी रचना प्रक्रिया की कोई बन्धी हुई लोक नहीं रही। कभी कभी कोई भूली हुई बात कहानी या उपन्यास में आती है। फिर भी इनकी हर रचना का एक निश्चित मक्सद है। अमेरिका जाने पर उनकी रचना सृष्टि में अधिक व्यवस्था, बदलाव आ गयी है। रचना में सतर्कता और सूक्ष्मता बढ़ गई है। इसके बारे में लेखिका कहती है, 'जहाँ मैं रहती हूँ, उस नगर में चार सौ तेईस भारतीय हैं। संगीत, समारोह, मुशायरे, भोजन, हिन्दी फिल्में चाय–पार्टियों में निमंत्रण मिलते हैं और प्रायः सम्मिलित भी होती हूँ पर उन सबके बावजूद भी जैसे उनके जीवन की परिधि पर हूँ। कभी मध्य में नहीं। भारत लौटने पर भी ऐसा ही लगता है इसलिए वह अलगाव शायद मेरे व्यक्तित्व और जीवन का अभिन्न अंग बनता जा रहा है'। व्यक्तित्व का यही अलगाव एवं तटस्थता उनकी रचनाओं में भी हम देख सकते हैं।

कथाकार के रूप में उषाजी की रचना प्रक्रिया की शुरुआत 1960 के बात ही हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् नारी जीवन में आये बदलाव, मूल्यों की टकराहट, नयी चिन्तन प्रवृत्ति को उषा प्रियंवदा ने बडी सूक्ष्मता के साथ मुखरित किया।

उषाजी के तीन उपन्यास हैं – ''पचपन खम्बे लाल दीवारे (1962), ''रुकोगी नहीं राधिका'' (1968), ''शेष यात्रा'' (1984)। पारिवारिक, सामाजिक, परिस्थितियों के झंझावत से उखड़नेवाली नारी को 'पचपन खम्भे लाल दीवारों' की कथा का केन्द्र बिन्दु बनाया है। 'रुकोगी नहीं राधिका' में अस्मिता की तलाश करनेवाली नारी की दुविधा को अंकित किया गया है। 1984 में प्रकाशित 'शेष यात्रा' में लेखिका ने सदियों से चलनेवाली नारी समस्याओं को दर्शाया है। साथ ही शिक्षा प्राप्त करके अपने व्यक्तित्व को बनाये रखनेवाले नारी को चित्रित किया है।

उषा प्रियंवदा ने 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' तथा 'इतना बड़ा झूठ' संग्रहों की कहानियों में 'यद्यपि आधुनिक जीवन एवं आधुनिकता–बोध सम्बन्धी विषयों को उठाया है परन्तु अपने इन उपन्यासों में वे केवल आधुनिक भारतीय शिक्षित अविवाहित महिला को ही विश्लेषित करती है। हिन्दी उपन्यास की एक बडी उपलब्धि है नारी–दृष्टिकोण से नारी का चित्रण और यही उषा प्रियंवदा ने किया है। स्वतन्त्रता–पूर्व के उपन्यासों में महिलाओं का चित्रण होता था क्योंकि नारी के संयोग के बिना कथा ही नहीं बन सकती। जासूसी, तिलस्मी, सामाजिक, रोमांटिक, ऐतिहासिक किसी भी प्रकार के उपन्यास की रचना बिना नारी पात्र के योगदान के नहीं हो सकती, किन्तु तब नारी पुरुष के माध्यम से, दिखाया तथा चित्रित किया जाता था। नारी को एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व के रूप में प्रस्थापित करनेवालों में उषा प्रियंवदा का नाम प्रमुख है।

भारतीय शिक्षित युवती की दुविधा ही उषा प्रियंवदा के उपन्यासों की वस्तु है। इस दुविधा को लेखिका ने बहुत से कोणों से परख कर देखा है। सदियों की शोषण की परम्परा एवं आत्म–दमन के इतिहास के पश्चात् आधुनिक काल में शिक्षित नारी स्वयं को अनेक संदर्भों में तौल–परख कर देख रही है। उसकी भावनाएँओं, विवेक, संस्कार, उत्तरदायित्व तथा उसके सामाजिक पारिवारिक परिवेश में निरन्तर संघर्ष हो रहा है। इस संघर्ष के चौतरफा दबाव में वह बुरी तरह पिस रही है, हाँफ रही है और टूट रही है, यह पचपन ख्सम्बे लाल दीवारों की वस्तु है।

उषा प्रियंवदा की यही नारी उनके दूसरे उपन्यास में जी उठती है, लेकिन परिवर्तन रूप में। उषाजी ने 'रुकोगी नहीं राधिका' उपन्यास में एक भारतीय नारी की दुविधा की आधार बनाया गया है जो अपनी दिशा तय कर न पा रही है। वह भारत से अमेरिका जाती है और उसे एक सांस्कृतिक झटका लगता है। वह अपने को तनाव की स्थिति में पाती है – ''यहाँ रहे या भारत लौट जाये? उषाजी को इस बात का गहरा एहसास है कि कटेपन का बोध सब जगह में है। पात्र अमेरिका में रहता हो या भारत के किसी छोटे शहर में, उनमें अकेलेपन है। 'रुकोगी नहीं राधिका' उपन्यास की नायिका 'राधिका' ने अकेलेपन को अपनाया है ओर 'पचपन खम्भे लाल दीवारों' की सुषमा का अकेलापन उस पर थोपा गया है। राधिका के अजनबीपन में आधुनिकता का बोध उजागर होता है। इस उपन्यास के द्वारा लेखिका ने आधुनिक नारी के 'स्वत्व' की तलाश को व्यक्त किया है। राधिका इस आधुनिकता बोध को उजागर करती है।

उषा प्रियंवदा की तीसरी उपन्यास है 'शेष यात्रा'। इस उपन्यास में नारी के मनोजगत और अन्तर्द्वन्द्व को भली भाँति उभारा गया है। इस उपन्यास की नायिका 'अनुका' संघर्ष और साहस द्वारा अपनी नियति बदलने में सफल हो जाती है। इसमें लेखिका ने तलाक के बाद आत्महत्या का सहारा न लेकर जिन्दगी की शुरुआत करनेवाली नायिका अनुका की कथा प्रस्तुत करती है।

उषा प्रियंवदा के कहानी संग्रह है – 'जिन्दगी और गुलाब के फूल (1961), 'एक कोई दूसरा (1966), 'कितना बड़ा झूठ' (1972), 'मेरी प्रिय कहानियाँ (1974) जिनमें 'जिन्दगी और गुलाब' के फूल, 'जाले', 'दो अन्धेरे', 'वापसी', 'कितना बड़ा झूठ', स्वीकृति, 'मछलियाँ', प्रतिध्वनियाँ, संबंध आदि बहुत सारी कहानियाँ संग्रहीत है।

'जिन्दगी और गुलाब के फूल' की कहानियाँ प्रायः भारतीय परिवेश में लिखी गयी है। अमेरिका के उन्मुक्त वातावरण से प्रभावित होकर लिखी गयी कुछ कहानियाँ 'एक कोई दूसरा', 'कितना बड़ा झूठ', 'मेरी प्रिय कहानियाँ' जैसे संग्रहों में संकलित है।

उषा प्रियंवदा की 'वापसी' उनकी बहुचर्चित कहानी है। इस कहानी में लेखिका ने मध्यवर्गीय परिवार की विशृंखलता को, समय के साथ एक पीढी की बदली हुई मानसिकता को सामाजिक परिवर्तनों के साथ आदमी के बदलते संबंधों को सच्चाई के साथ अभिव्यक्त किया है।

''जिन्दगी और गुलाब के फूल'' कहानी में भी मध्यवर्गीय परिवार की टूटती स्थिति को व्यक्त किया गया है।

'जाले' कहानी में वैवाहिक जीवन की क्षणभंगुरता एवं जड़ता को व्यक्त किया गया है। 'स्वीकृति' कहानी में पति–पत्नी के बीच उठते तनाव एवं पति की विचित्र मानसिकता को व्यक्त किया गया है।

समझौते के अभाव के कारण वैवाहिक जीवन में उठलेवाली समस्याओं को 'दृष्टिदोष' में प्रस्तुत किया है।

उषा प्रियंवदा के पुरुष पात्र संख्या में थोड़े है, परन्तु सब ही अत्यन्त सशक्त, भव्य एवं पूर्णतया आधुनिक है। सन्देह, अविश्वास अथवा अतीत के किसी दाग को लेकर मनमुटाव ये जानते तक नहीं। ये स्वयं सबल है और नारी से सबलता की ही अपेक्षा रखते है। स्वयं पाप–भावना से मुक्त ये पुरुष–नारी में भी हरदम पाप अथवा कलुष की परछाई नहीं टूढँते फिरते। छोटी छोटी चीज़ों से लेखिका जीवन के बड़े सशक्त प्रतीक निर्मित करती है।

नारी को एक स्वतन्त्र मनस्तत्व युक्त जीवित इकाई के रूप में प्रस्थापित करनेवालों में उषा प्रियंवदा का नाम प्रमुख है।

1.4. हिन्दी उपन्यास में नारी :

प्रत्येक उपन्यासकार नारी को विभिन्न दृष्टिकोण से परखता है। "कोई उन्हें वीरांगना के रूप में, कोई जासूस के रूप में, कोई केवल माँ के रूप में, कोई केवल उन्हें प्रेम की विरहग्नि में जलती हुई नायिका के रूप में देखता है और चित्रित करता है"[1]।

हिन्दी उपन्यासों में नारी के व्यक्तित्व–विकास का मूल तोता–मैना की कहानियाँ है। यह देवी या दानवी के सीमित दायरे से भाभी, माता, बहिन के सम्बन्ध में भी जानी जाती है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में नारी की विभिन्न समस्याओं के निरूपण के साथ नारी स्वरूपों का उन्नयन भी होने लगता है। नारी के व्यक्तित्व विकास में हिन्दी उपन्यासों का सर्वाधक योगदान रहा है। प्रेमचंद के पूर्व की नारी घर की चारदीवारी में बंधी, पर्दे की रानी बनाई गई थी। आज उसका पहिनावा, भाषा, विचार और जीवन के मानदण्ड बदल गये है। आज वह पुरुष की विलास–सामग्री या दासी न होकर उसकी सहचरी है। समाज, परिवार एवं व्यक्तित्व स्तर पर आज की नारी स्वयं के अस्तित्व–बोध के प्रति सचेत है। यदि तनिक गहराई से जाँच किया जाये तो नारी–जागृती की यह धारणा नारी–समाज का केवल ऊपरी आवरण दिखाई देगा। उसकी तह में आज भी नारी की सिसकी, निरूपाय स्थिति से एकदम छुटकारा मिलता दिखाई नहीं देता। नारी की यही द्वंद्वात्मक स्थिति उपन्यासों में विविध स्तरों पर परखी जा सकती है।

''हिन्दी उपन्यासों में आधुनिक नारी के कई–कई बिम्ब झलकते है जो जीवन के एक किनारे पर स्वयं को स्वतंत्र घोषित करने में सफल होता भी है तो दूसरा किनारा उन्हे अपनी सीमा में बाँधे बिना नहीं छोडता''[2]।

प्रेमचन्द की सुमन (सेवासदन) ऐसा ही नारी–चरित्र है जो अपनी चारित्रिक दृढ़ता एवं आस्था के बल पर सामाजिक शोषण एवं पाखंड के विरुद्ध करने की धुन में स्वयं को गल देती है। 'गोदान' की धनिया अत्यन्त जीवटवाली महिला होकर भी समाज के बिखराव से स्वयं को भी टूटता पाती है। जो धनिया गरीबी के पार्श्व में जकड पति को बेमौत मरते देखने के लिए विवश हो जाती है।

जैनेन्द्र की 'सुनिता' और 'मृणाल' भी नारी–चरित्रों के दो छोर है। एक अपने आप सुहद एवं तार्किक है जो अपनी तेजस्विता में पुरुष की चित्तवृत्तियों का परिष्कार करने की क्षमता रखती है। दूसरी अपार जिजीविषा से भरपूर होकर भी जीवन और मृत्यु के बीच आँसू और वेदना के सागर में डूबती–उतरती रहती है।

इलाचन्द्र जोशी की 'मंजरी' (प्रेत और छाया) अपने को छलनेवाले पारसनाथ के प्रति अपनी घृणा व्यक्त करते हुए कहती है – "विश्वव्यापी क्रांति के इस युग में नारी ने अपनी शक्ति को पहचाना है और इस महाबीज को सुरक्षित रखे हुए है। अब उसके मानसिक विद्रोह को दबाने की शक्ति किसी मानव में तो क्या ब्रहम में भी नहीं रह गई है"[3]।

मंजरी का मानसिक विद्रोह उसकी महत्वाकांक्षा को प्रतिफलित करने के शक्ति देता है, उसमें एक दिव्य ओजस्विता भर देता है। अपमान की ठोकर खाकर यह सारी अपने चेतना से विद्रोह कर डाक्टर बन जाती है, जबकि समाज उसे केवल वेश्या बनाकर ही छोड देना चाहता था।

अज्ञेय की शशि (शेखर–एक जीवनी) के संस्कार स्वतंत्रता और पति के बीच संघर्ष करते है, जबकि रेखा (नदी के द्वीप) ने अपने संस्कार के बेल से भावुकता को जीत लिया है। वह परिस्थिति को भोगने और उस पर विजय पाने में पटु है।

वृन्दावनलाल वर्मा की 'झाँसी की रानी' का चरित्र नारी वर्ग के लिए उदाहरण बन जाता है। अपने साहस, सौन्दर्य एवं करुणा की त्रिवेणी लिए वह हमारी हार्दिक श्रद्धा, स्नेह का पात्र बनता हे। 'कचनार' भारतीय नारी के हृदय में बहती प्रेम की अजस्त्र धारा को स्थापित करनेवाली नारी है।

चतुरसेन शास्त्री के "वैशाली की नगर वधू" की अम्बपाली अपने रूप और कला–सौन्दर्य में अप्रतिम है, साथ ही सामाजिक विडम्बना की शिकार भी। 'गोली' की चम्पा नारीजन्य विवशता की जीती–जागती तस्वीर है। इनकी तुलना में यशपाल की 'दिव्या' अपनी विवशताओं में भी जीवन–पथ ढूँढ लेनेवाली नारी है।

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की 'निपुणिका' (बाणभट्ट की आत्मकथा) के चरित्र में जो गौरव की दीप्ति है वह अविस्मरणीय है। निपुणिका कमल पुष्प के समान है जो पंक में जन्म लेकर भी निर्मल और स्वच्छ है। उसके जीवन में बाणभट्ट की आत्मकथा में विवेचित यह दार्शनिक सूत्र ज्यों–का–त्यों घटित हुआ है कि – "स्त्री की सफलता पुरुष को बाँधने में है, किन्तु सार्थकता पुरुष की मुक्ति में है"[4]।

भगवतीचरण वर्मा की 'चित्रलेखा' भी हिन्दी उपन्यास की अमर नारी–पात्र है। आसक्ति और अनासक्ति का दर्शन रूपायित करनेवाली नर्तकी चित्रलेखा अपनी छवि पाठक के हृदय में सदा के लिए लिख जाती है।

साठोत्तरी पीढी के उपन्यासों में नारी और पुरुष के यौन सम्बन्धों को लेकर नारी के बाह्य और आंतरिक परिवेश पर घटित घटनाक्रम का उल्लेख मिलता है, इसके साथ–साथ नारी के 'घर' और 'बाहर' के बीच की दूरी तय करने में आनेवाली समस्याएँ तथा उनसे जूझती, उलझती, निकलती नारी का चित्र भी इन उपन्यासों में मिलता है।

नैतिकता और अनैतिकता के मानदंडों की बदली हुई स्थिति में बदले रूप को लेकर स्वीकृति–अस्वीकृति का दुविधा में जूझती नारी की तस्वीर को इन उपन्यासकारों ने कई

कोणों से चित्रित किया है। आधुनिक उपन्यासों का मूल स्वर आज के व्यक्ति की कुंठा, संत्रास, मृत्युबोध तथा एकाकीपन की असह्य यातना है जिसे नारी–चरित्रों के संदर्भ में निरूपित किया गया है। कमलेश्वर का 'डाक बँगला', 'सीमाएँ टूटती है' (श्रीलाल शुक्ल), 'दूसरी बार' (श्रीकांत), 'बेघर' (ममता कालिया), 'सूरजमुखी अँधेरे के', (कृष्णा सोबती), 'सफेद मेमने' (मधि मधुकर), 'नदी और सीपियाँ' (शानी), 'दो' (गिरिराज किशोर), 'कच्ची पक्की दीवारें' तथा 'कांचघर', (रामकुमार भ्रमर), 'मुर्गीखाना' (केवल सूद), 'दंडद्वीप' (रमेश उपाध्याय) आदि अनेक उपन्यासों में यौन स्थितियों का विविधंकन तथा नारी की मानसिकता एवं कायिक प्रभावों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

किशोर वय की 'काया' (निर्मल वर्मा) 'लालटीन की छत' के नीचे रहकर असमय ही जीवन और मृत्यु का साक्षात्कार करती है। परिस्थितियों के भँवर जाल में उलझी काया में गहन उदासी घर कर गई है, किन्तु उसके भीतर का अस्तित्ववादी भाव उस उदासी में से फूटता है। काया के प्रथम रजोदर्शन पर उपन्यास की समाप्ति लेखक का विशिष्ट जीवन–दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है।

'अलग–अलग वैतरणी' (शिवप्रसाद सिंह), 'धरती धन न अपना' (जगदीश चन्द्र माथुर), 'आधा गाँव' (राही मासूम राजा), 'खारे जल का गाँव' (डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ला), 'जल–टूटता हुआ' (रामदरश मिश्र), 'राग दरबारी' (श्रीलाल शुक्ल), 'काला जल' (रानी) आदि आंचलिक उपन्यासों के अंचल विशेष में आंचलिक परिवेश में बँधी नारी का चित्र झाँकता है जो अपने आंचलिक संस्कारों और मर्यादाओं में दबी हुई अपने अन्तर की आग को बाहर लाने की व्याकुलता में छटपटा रही है। 'जल टूटता कुआ' की बदमियाँ,

'लवंगी', 'धरती धन न अपनी' की 'ज्ञानों', 'अलग–अलग वैतरणी' की कमिया भाभी तथा परहनियां भाभी, 'खारे जल का गाँव' की चनकी आदि ऐसी ही स्त्रियाँ हैं। शिवानी की 'कृष्णाकली' भी इसी कड़ी की नारी है।

बदलते सामाजिक परिवेश में नारी ने स्वयं को एक स्वतंत्र इकाई के रूप में घोषित करने की जो दृढता अपनायी है – 'आपका वंटी' की शकन और 'एक इंच मुस्कान' की रंजना एवं अमला, 'पैरों के छाले' की मनीषा, 'कच्ची पक्की दीवारें' की सुमति तथा 'अन्तराल' की श्यामा, 'तेरी मेरी उसकी बात' की उषा आदि इसी प्रकार की नारी–पात्र है।

नारी की मंगलमय, सौन्दर्य एवं प्रेमानुभूति से परिपूर्ण स्वरूप भी इन उपन्यासों में सहज ही मिलता है। शिवानी की 'कृष्णाकली' की चम्पा, 'एक इंच मुस्कान' की रंजना, 'कांचघर' की माला, 'प्रेम एक अपवित्र नदी' की वृजरानी, 'बेघर' की संजीवनी, 'पुनर्वा' की शर्मिला, 'मृणाल' की मंजरी तथा चन्द्रा, 'गली आगे मुडती है' की आरती तथा जयन्ती, 'अलग–अलग वैतरणी' की पुष्पा तथा 'मानस का हंस' की रत्न ऐसी ही नारी–पात्र है।

साहित्य की प्राय : सभी विधाओं में नारी का चित्रण किसी–न–किसी रूप में मिलता है, किन्तु आनुपातिक दृष्टि से उपन्यास–साहित्य में नारी–चित्रण की असीम संभावनाएँ निहित हैं। ''कथात्मक को गति देने के लिए नारी–पात्रों के विरोधी व्यक्तित्वों को घटनाओं के घात–प्रतिघात से आगे बढाने में जितनी सुविधा उपन्यासों में रहती है, उतनी साहित्य की अन्य किसी विधा में नहीं रहती। प्राचीन युग से लेकर अत्याधुनिक युग तक

नारी–मनोविज्ञान का जितना विस्तृत और गहरा चित्रण उपन्यासों में मिलता है उतना अन्य किसी विधा में नहीं''[5]।

1.4.1. उपन्यास - नयी दिशा बोध-प्रेमचन्द

प्रेमचन्द ने ही उपन्यास में मानव का स्वाभाविक एवं सजीव अंकन प्रारम्भ किया। उन्होंने ही पहली बार हिन्दी उपन्यास में घटना और चरित्र का सन्तुलन स्थापित कर मनोविज्ञान का उचित समावेश किया। उन्होंने ही समाज की समस्याओं की सर्वप्रथम कथा साहित्य में स्थापित किया। प्रेमचन्द ने जीवन और जगत् के विविध क्षेत्रों का, समाज के विभिन्न वर्गों का, ग्रमीण तथा नागरिक क्षेत्रों की बहुत–सी दशाओं तथा परिस्थिसतियों का सूक्ष्म निरीक्षण कर व्यापक अनुभव प्राप्त किया था। मनोविज्ञान में वे पंडित थे। मानव–स्वभाव के विविध पक्षों से भली–भाँति परिचित थे। उपन्यास कला का भी उन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में मुख्यतः विधवाओं और वेश्याओं की समस्याओं, नारी की आभूषण प्रियत, मध्यवर्ग की झूठी शान और दिखावे के प्रवृत्ति सम्मिलित हिन्द–परिवार में नारी की दयनीय स्थिति आदि प्रश्नों और पक्षों पर प्रकाश डाला। प्रेमचन्द ने विशेष रूप से नारी की हीन स्थिति पर गहरे विचार किया एवं उन्होंने बृहत स्तर पर उपन्यासों की रचना कर नारी का पवित्र एवं उदार रूप उभारकर उसे समाज द्वारा पुन : सम्माननीय रूपों में अंकित किया।

प्रेमचन्द प्रारम्भ में उर्दु के लेखक थे और कहानियों लिखते थे। प्रेमचन्द के महत्वपूर्ण उपन्यास है सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन, कर्मभूमि, गोदान और मंगलसूत्र (अपूर्ण)। प्रेमचन्द उपन्यास को मनोरंजन की वस्तु नहीं मानते थे। वे अपने उपन्यासों द्वारा भारतीय जनता के जागरण ही नहीं बल्कि विशेषत : नारी जीवन में सुधार एवं निर्माण की भावना का प्रसार करना चाहते थे। प्रेमचन्द मानवतावादी सहृदय व्यक्ति थे। उन्होंने हिन्दी कथा साहित्य को मनोरंजन के स्तर से उठाकर जीवन के साथ सार्थक रूप में जोड़ने का काम किया।

प्रेमचन्द की उपन्यास कला की मुख्य विशेषताओं है – व्यापक सहानुभूति विशेषकर नारी पर सहानुभूति का चित्रण, यथार्थवाद अर्थात् उपन्यास में नारी का यथार्थ चित्रण घर और समाज में नारी की स्थिति, वेश्याओं की जिन्दगी, वृद्ध विवाह, विधवा समस्या, मध्यवर्ग नारी की कुण्ठाएँ आदि ने उन्हें उपन्यास लेखन के लिए प्रेरित किया। उनके उपन्यासों में मुख्यतः विवाह से जुडी समस्याएँ, तलाक, दहेज प्रथा, कुलीनता का प्रश्न, विवाह के बाद घर में पत्नी का स्थान आदि का चित्रण ज्यादा है।

1.4.2.1. स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास में नारी की प्रतिमा :

स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कथा–साहित्य में प्रेम, विवाह, स्त्री–पुरुष के टूटते सम्बन्धों की पृष्ठभूमि में जितनी कहानियाँ और उपन्यास इस युग में लिखे गये है उतना पहले कभी नहीं लिखा गया। शायद तमाम दुनिया की भाषा कुल मिलाकर स्त्री–पुरुषों की बातचीत है जो उनके सम्बन्ध एक ओर जहाँ नारी की नयी चेतना दी, नयी वैचारिकता एवं अधिकार बोध प्रदान किया, वहीं कुछ नयी समस्याएँ भी उत्पन्न कर दी है। औरतें तो सही औरतें

हैं, वे झूठी सती या वेश्यायें नहीं है। कथा साहित्य में नारी पात्रों ने अपनी अस्मिता की पहचान एवं शोषण का विरोध किया है, आज का कथाकार नारी समस्या को जितना सुलझाने का प्रयास करता है, यह समस्या उतनी उलझती जा रही है। 'विरुद्ध' की रजनी के माध्यम से मृणाल पांडे ने एक उच्चशिक्षता, उच्चवर्गीय, स्वाभिमानिनी नवयुवती पत्नी के मानसिक संघर्ष की तीखी और मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। आशा है समाज में अपनी अहम भूमिका के साथ नारी का स्वरूप स्थापित होगा और अवश्य होगा। वह केवल मादा नहीं होगी एक व्यक्ति भी होगी ताकि विश्व को भारतीय नारी का अस्मिता की गौरवमयी पहचान दे सके।

उपन्यास की प्रारंभिक अभिव्यक्ति नारी की पर्दा–प्रथा, सती–मर्यादा, विधवा–विवाह निषेध विषयक ही रही, सुधार आन्दोलनों का नारी पर प्रभाव होने के बाजजूत पुरुष का दृष्टिकोण नारी–स्वतंत्रता को लेकर संकुचित ही रहा। अत : नारी विषयक उपदेशात्मक उपन्यास ही अधिक लिखे गये। इसके साथ ही साथ ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा भी चल निकली थी। दूसरी ओर नई मान्यताएँ उभर रही थी। साथ ही राज–भक्ति स्वर भी अब मुखरित हो रहा था। धार्मिक अंधविश्वास, अनुदारता तथा आडम्बर अब नव जागरण–काल में तहम–नहम हो रहे थे। सामाजिक कुरीतियों को, जैसे बाल–विवाह, वृद्ध–विवाह, विधवा–विवाह आदि का खण्डन–मण्डन आरम्भ होने लगा था।

भगवती प्रसाद वाजपेयी, विश्वम्भरनाथ कौशिक, सियाराम शरण गुप्त आदि ने नारी के देवी और दानवी रूपों का चित्रण विस्तार से किया। किन्तु नारी–मन की अन्तरम गहराइयों में पैठ, जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी आदि द्वारा हुई और उन्होंने नारी के

बाह्य पक्ष की अपेक्षा उसकी मानसिकता का विराट अंकन किया। इसके बाद अधुनातन उपन्यासों में, प्रेमचन्द, प्रसाद और जैनेन्द्र द्वारा उद्घाटित कथ्य एवं शिल्प योजना पर असंख्य उपन्यास लिखे जा रहे है – जिनमें नारी अपने स्वरूपों में साहित्य एवं समाज का महत्वपूर्ण अंग सिद्ध हो रही है। बदलती हुई युगीन परिस्थितियों ने नारी के बाह्य एवं मानसिक धरातलों को पर्याप्त सीमा तक प्रभावित किया है, जिसकी प्रतिच्छाया आज के उपन्यास साहित्य में प्रतिबिम्बित हो रही है।

प्रारंभ में नारी केवल काव्य–सृजन के उत्स के रूप में कार्य करती रही है। किंतु कालान्तर में साहित्य की अन्य विधाओं में भी उसके विभिन्न रूपों का चित्रण होने लगा। गद्य की विवेचनात्मक और व्याख्यात्मक शैलियों के कारण नारी के विकास के साथ–साथ नारी को भावुक, रोमांटिक और संवेदनात्मक धरातल से उठकर तर्कसम्मत बनाने का प्रयास किया गया।

1.4.3.1. हिन्छी उपन्यास में चित्रित नारी की समस्याएँ :

''भारत में ही नहीं विश्व के प्राय: प्रत्येक भाग में नारियों के सम्मुख उन्नीसवीं शताब्दी में अपनी हीनावस्था से बाहर निकलने की समस्या सर्वप्रथम की। इस काल में नारियों में चेतना उत्पन्न करने, उनकी शिक्षा, प्रगति, आर्थिक स्वतंत्रता, राजनीतिक तथा सामाजिक अधिकार की प्राप्ति आदि कुछ ऐसे ही समस्याएँ थी जिनकी ओर समाज का ध्यान था तो गया ही नहीं था, और गया भी था तो, उसे क्रियात्मक रूप प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयाँ थीं''[6]।

उपन्यासकारों ने नारियों की हीनावस्था की ओर अपनी विशेष रुचि प्रदर्शित की, तथा नारी की इन कठिनाइयों को प्रमुखता देते हुए ऐसी नायिकाओं की कल्पना करने की चेष्टा की, जिससे वे नारियों की इन समस्याओं को यथार्थवादी ढंग पर उपन्यास के माध्यम से समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर सकें तथा उसके बन्द नेत्र खोले, उसे परिवर्तन की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दे सकें। निम्नलिखित समस्याओं को नारी–चित्रण के माध्यम से प्रस्तुत कर उनका समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न सभी उपन्यासकारों ने किया है।

1. अनमेल विवाह
2. वेश्या वृत्ति
3. विधवा विवाह
4. नारी की आर्थिक स्वतंत्रता
5. पारिवारिक जीवन
6. प्रेम

भारत में नारियों को विवाह सम्बन्धी वह स्वतंत्रता नहीं थी, जो विदेश में अत्यन्त साधारण बात थी। अनमेल विवाह का एक और कारण भारत की शोचनीय आर्थिक अवस्था, नया भारतीय समाज में विवाह सम्बन्धी दोषपूर्ण रूढ़ परंपराएँ थी। अनमेल–विवाह की भीषण समस्या से उपन्यास अछूता न रह सके, और उपन्यासकारों ने ऐसी नायिकाओं की परिकल्पना की, जो अनमेल विवाह का शिकार होती थी, और जीवन पूर्णतया असंतोषपूर्ण उदाहरण है। ''सेवासदन'' में अनमेल विवाह के कारण ही सुमन वेश्या बनती है।

अनमेल विवाह की समस्या के साथ ही नारी जीवन में विधवा की समस्या भी प्रमुख रूप में सदैव उपस्थित रही है। विधवा नारियाँ की समाज में बराबर ही दुर्गति हुई है। सत्य स्थिति तो यह है कि विधवा समस्या मात्र आर्थिक ही नहीं वैयक्तिक भी है। प्रारंभ में नारी अपने पति के शव के साथ ही सती हो जाना पडता था, क्योंकि पति की मृत्यु के पश्चात् उन्हें बडा अपमानजनक जीवन व्यतित करना पडता था। उपन्यासकारों का प्रमुख उद्देश्य ऐसे नायिकाओं की कल्पना कर केवल समाज को ही आकर्षित करना नहीं था, वरन् स्वयं विधवा नारियों को भी गहराई से सोचने के लिए तथा आत्महत्या आदि कायरतापूर्ण मार्ग न अपनाकर अपनी उस हीनावस्था में भी जीवनगत गरिमा स्थापित करने की प्रेरणा देना था। प्रेमचन्द के प्रारम्भिक उपन्यास 'प्रतिज्ञा' में पूर्ण की परिकल्पना इसी उद्देश्य से की गई थी, जिससे समाज के सम्मुख विधवा समस्या का एक पूर्ण चित्र उपस्थित हो सके।

नारी जीवन में वेश्या समस्या भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। आर्थिक विषमताओं तथा समाज की रूढ परम्पराओं के कारण नारियों के लिए वेश्यावृत्ति अपनाना एक प्रकार से आवश्यक सा हो जाता था। उपन्यासकारों ने नायिकाओं की कल्पना केवल इसी उद्देश्य से की जिससे वे वेश्या–समस्या का सर्वांग चित्र समाज के सम्मुख उपस्थित कर सकें।

पारिवारिक जीवन तथा नारी–पुरुष के प्रेम को सफलतापूर्वक चित्रित करने के लिए भी नायिकाओं की कल्पना की जाती हे। पर इन सब समस्याओं के मूल में नारी की आर्थिक समस्या ही सर्वप्रमुख है।

समस्याएँ अधिकांशत: सामाजिक क्षेत्र में जन्म लेती है और उनका सम्बन्ध अधिकतर नारी–जाति से होता है। विविध समस्याओं और कुप्रथाओं ने नारी–जाति को बडी हीनावस्था में पहूँचा दिया है। पर्दा प्रथा के कारण नारी घर में बन्धिनी बना दी गई। दहेज की समस्या ने पुत्री के जन्म को ही अप्रिय बना दिया। बाल–विवाह से विधवा समस्या और वेश्या समस्याओं का जन्म हुआ। स्त्री की समाज में दयनीय स्थिति का कारण, जहाँ उसकी स्त्री होना है, वहाँ इन समस्याओं के अभिशापों का उस पर लड़ना भी है। यह कहना बिलकुल सही है कि निम्न वर्ग में नारी की कोई समस्या नहीं है, किन्तु मध्यवर्ग में जो नारी घर की इज्जत है उसे अपनी इच्छाओं और आशाओं का गला घोंटना पडता है। यों भी कहा जा सकता है कि महिलाओं के साथ समस्याओं का जुड़ा रहना उनकी स्थिति सी बन गई है। ''भारतीय महिलाओं की समस्याओं और समाधान पर बहस चलाना आज की सबसे बडी जरूरत है। आज का साहित्य 'नारी' को केन्द्रीय भूमिका देकर इस दिशा में अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह कर रहा है''[7]। कुछ प्रमुख समस्याएँ इस प्रकार है –

1. वैवाहिक समस्या (दांपत्य जीवन में असंतोष की समस्या)
2. पारिवारिक समस्या।
3. आर्थिक समस्या।
4. विधवा समस्या।
5. बाल–विवाह की समस्या।
6. वेश्यावृत्ती की समस्या (आर्थिक अभाव के कारण महिलाएँ इसे अपनाती है।)
7. दहेज की समस्या

8. शिक्षा की समस्या

9. महिलाओं के साथ अभद्र व्यवहार की समस्या (बलात्कार, छेड़खानी आदि)

10. समाज में दूसरे दर्जे का माना जाना।

11. सम्बन्ध विच्छंद (तलाक)

12. कामकाजी महिलाओं की समस्याएँ (दो मोर्चों पर संघर्षरत–एक घर, एक बाहर)

स्त्री की समस्या का समाधान केवल महिलाओं के द्वारा करना एकाकी है। इस विशाल समाज की स्त्री एक कड़ी है। स्त्री की हर एक समस्या अन्त में समाज की समस्या है। हमें स्त्री–पुरुष सहजीवन सहज आनन्दमय और परस्परपूरक बने ऐसा समाधान खोजना है। परस्पर सहयोग पर आधारित सन्तुलित परिवार बनाने के साधन खोजना है। एक दूसरे का कोई शोषण न करे। स्त्री में कुछ गुण पालन–पोषण के कारण पैदा होती है, सहनशीलता और ब्रह्मचर्य आदि। ''अगर भारतीय समाज स्वस्थ स्त्री–पुरुष सहजीवन चाहते है तो हमारी आज की समाजिक मान्यताओं में परिवर्तन करना आवश्यक है। दोनों संयमी, स्वावलम्बी, एक–दूसरे के प्रति ईमानदार, सहिष्णु और परस्पर सहयोगी बने। स्त्री–पुरुष दोनों के पालन–पोषण के संस्कार बदलने की जरूरत है''[8]।

श्रम–विभाजन की अवश्यकता भी समय की माँग है। अर्थोपार्जन के लिए जब स्त्री घर से बाहर निकलती है ऐसी परिस्थिति में श्रम विभाजन की पारस्परिक विचारधारा मोड़ना आवश्यक है। नारी में निर्भयता और आत्म–विश्वास जाग्रत हो, पुरुष में मृदुता, परस्पर सहयोग, सहानुभूति पनपे। स्त्री–पुरुष दोनों का आत्मसम्मान बना रहे। ''परिवार

ही संस्कार क्षेत्र है। जीवन–विकास के लिए परिवार के हर सदस्य में अर्थोपार्जन की क्षमता पैदा करना, स्त्री हो या पुरुष उसका सर्वांगीण स्वस्थ जीवन को बनाने के लिए खुलकर सोचनेवाले और संतुलित विचारधारावाले व्यक्तियों की जरूरत है। हृदय से और बुद्धि से समन्वयवादी होने की जरूरत है आज''[9]।

1.5 निष्कर्ष :

उपन्यास के नारी पात्र में कोई–न–कोई नारी ऐसी होती है जो कथानक का नेतृत्व करती हुई उसे अन्तिम उद्देश्य तक ले जाती प्रतित होती है। हिन्दी उपन्यासों में आधुनिक नारी के कई–कई बिम्ब झलकते है। जो जीवन के एक किनारे पर स्वयं को स्वतंत्र घोषित करने में सफल होती भी है। नारी देवी या दानवी के सीमित दायरे से भाभी, माता, बहिन के सहज सम्बन्ध में भी जानी जाती है। आज की नारी पुरुष की विलास–सामग्री या दासी न होकर उसकी सहचरी है। समाज, परिवार एवं व्यक्तिगत स्तर पर आज की नारी स्वयं के अस्तित्व–बोध के प्रति सचेत है।

उषा प्रियंवदा स्वातन्त्रयोत्तर काल की लेखिका है। इसलिए उनके साहित्य में नारी जीवन की सभी विशेषताएँ समा गयी है। मध्यवर्ग जो कि आधुनिक युग की दौड़ में अपना स्थान पाने के लिए निरन्तर संघर्ष करता रहा है, उस युग की नारी ही उसकी प्रेरणा और साहस दोनों है।

आधुनिकता बोध ने नारी को प्रभावित किया है। उषाजी ने अपने तीनों उपन्यासों में नारी जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला है। नारी जीवन या मानव जीवन के कई पहलू होते है जैसे व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक जीवन, पारिवारिक जीवन, वैवाहिक जीवन

आदि। हरेक पहलु में व्यक्ति के कार्य कलाप अलग–अलग होते है। इसीलिए नारी भी कई रूपों में अलग–अलग होते है। इसीलिए नारी भी कई रूपों में अपने आप को अभिव्यक्त करती है। उसके जीवन के सभी पहलुओं का चित्रण, सभी परिस्थितियों का चित्रण उषाजी ने यथार्थ रूप में किया है। नारी जीवन के सभी पहलू उषाजी ने स्पष्ट किया है।

नारी स्वातंत्रय या समानता हमारे सामान्य विकास कायक्रमों का अंग है। परंतु सरकारी कार्यवाही तब तक न तो कारगर और न ही पर्याप्त सिद्ध होगी जब तक कि महिलाएँ स्वयं अपनी अधिकारों और संबंद्ध दायित्वों के प्रति जागरूक नहीं होती। नारी स्वतंत्रता राष्ट्र की भौतिक, वैचारिक और आर्थिक संतुष्टि के लिए अनिवार्य अंग है। अतीत के अध्ययन से वर्तमान स्थिति को बेहत्तर बनाने के लिए उन्हें पूरी तरह अपने हितों और हकों से परिचित कराना होगा। इस ओर आजकल 'Women Empowerment' पूरे भारतवर्ष में हो रहा है।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ. 62

2. डॉ. विमला शर्मा, साठोत्तर हिंदी उपन्यासों में नारी के विविध रूप, पृ. 28

3. इलाचन्द्र जोशी, प्रेत और छाया, पृ. 406.

4. डॉ. विमला शर्मा, साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूप, पृ. 29.

5. ——वही——, पृ. 30, 31.

6. डॉ. सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ. 67,68.

7. उमा शुक्ल, भारतीय नारी–अस्मिता के पहचान, पृ. 58.

8. ——वही——, पृ. 58.

9. ——वही——, पृ. 58, 59.

द्वितीय अध्याय

पचपन खम्बे लाल दीवारें - पारिवारिक सम्बन्धों से उलझी नारी स्वत्व

पचपन खम्बे लाल दीवारें – पारिवारिक सम्बन्धों से उलझी नारी स्वत्व

2.1. पचपन खम्भे लाल दीवारें – कथावस्तु

आधुनिक शिक्षित नौकरीपेशा नारी के जीवन संघर्ष को उभारनेवाला सशक्त उपन्यास है – 'पचपन खम्भे लाल दीवारें'। उपन्यास की नायिका सुषमा दिल्ली के एक महिला कॉलेज की प्राध्यापिका है, साथ–साथ वहाँ के छात्रावास की वार्डन भी। आर्थिक रूप से स्वावलम्ब सुषमा के कन्धों पर घर की जिम्मेदारियाँ है।

सुषमा के घर पर रोगग्रस्त पिता, अतृप्त इच्छायेंवाली माँ और उसके अपने भाई, बहन है। रूढिग्रस्त माँ नहीं चाहती है कि सुषमा बाहर नौकरी करें। लेकिन अवकाशन प्राप्त पिता और घर की समस्याओं को देखकर माँ मज़बूरीवश अपने विचारों को त्याग देती है। अब उस परिवार की रीढ़ की हड्डी है सुषमा। जिस कारण कोई सुषमा को उस परिवार से दूर रखना नहीं चाहता। यहाँ तक उसकी माँ भी।

सुषमा कॉलेज और हास्टल के काम में सदा व्यस्त रहती है। वह कभी अकेले में बैठकर सोचती है कि यदि वह विवाहिता होती तो आज उसका भी अपना संसार होता, एकत्र शामों का साथी–घर, मोटर, बच्चे सभी होते। वह मन ही मन अपनी जिन्दगी के अधूरेपन को लेकर दु :खी रहती है। जीवन के उदास पलों में नील कश्यप का आगमन होता है जो उससे चार साल छोटा है। नील के आगमन से सुषमा की जीवन में पहली बार खोये हुए सालों का एहसास होने लगता है। नील उम्र में उससे छोटा है यह जानते हुए भी वह नील की ओर आकर्षित होती है और यह आकर्षण प्रेम का रूप ले लेता है।

नील फिलिप्स कंपनी में काम करनेवाले शरीफ युवक है। एकनिष्ट प्रेमी नील सुषमा को अपनी काम वासना की मूर्ति न मानकर उसकी जिन्दगी को यथार्थ से देखने का प्रयास करता है। लेकिन कभी–कभी सुषमा पूर्ण रूप से नील को अपनी प्रेमी स्वीकार करने की तैयार नहीं होती क्योंकि नील की उम्र उसके सामने एक समस्या बनकर खडी होती है। नील और उसके संबंध को लेकर समाज उन पर प्रश्न चिन्ह खींचने लगता है। सुषमा की सहेली मीनाक्षी उसे चेतावनी देती है। लेकिन सुषमा उसकी चिन्ता किये बिना खुलकर नील के साथ घूमती है। उनमें आकर्षण इतना प्रगाढ़ हो जाता है कि एक की अनुपस्थिति दूसरे को बेचैन करने लगती है। सुषमा अपने इस संबंध को दोस्त की संज्ञा देती है। अपने इस दोस्त के सामने वह अपने सभी दुखों को भूल जाती है।

घरवाले सुषमा की जिन्दगी के बारे में निश्चिन्त है। वे सुषमा की बजाय बहनों की शादी को लेकर व्याकुल रहते है। अम्मा, बहन की शादी नील कश्यप से करवाना चाहती हे। सुषमा अम्मा के विचारों के विरुद्ध कुछ कह नहीं पाती है। लेकिन जब शादी की बात को लेकर अम्मा के पत्र सुषमा के पास आती है तो सुषमा उसे फाड़कर फेंक देती है। उससे उसके मन का आक्रोश स्पष्ट हो जाता है। उसका यह आक्रोश दबा हुआ है जिसे वह बुलंद नहीं कर पाती है। यही उसकी विवशता है। जीवन की यह विवशता उसकी युवावस्था से शुरु होती है।

युवावस्था में सुषमा पड़ोस के वकील के लडके नारायण को चाहती थी और उसको शादी करना भी चाहती थी। लेकिन जब दहेज की समस्या सामने आती है तब वह संबंध टूट जाता है और यहीं से सुषमा के जीवन की समस्याएँ, पीडा, व्यथा शुरू होती है।

एक ओर सुषमा घरेलु समस्याओं से आहत है तो दूसरी ओर कॉलेज की अध्यापिकाओं की कूटनीति की शिकार बनती है। होस्टल के वार्डन पद पर सब अध्यापिकाओं की नज़र रहती है। वह किसी न किसी प्रकार सुषमा को होस्टल वार्डन पद से निकालने का प्रयास करती है। इसके लिए नील और सुषमा के अवैध संबंध को हथियार बनाती है।

वे योजनाबद्ध षड़यंत्र की रूपरेखा से सुषमा और नील को रंगे हाथों पकड़ लेती है और यह खबर कॉलेज की छात्राओं के बीच में फैल जाती है। छात्राएँ सुषमा पर ताने मारती है। छात्राओं की व्यंग्य बातों से वह हतप्रज्ञ हो जाती है। उसकी लगता है कि इतने सालों से बना उसका अस्तित्व पल भर में मिट गया है। सुषमा को अपने आप पर पछतावा होता है। सबके व्यंग्य बागों से आहत सुषमा को सहेली मीनाक्षी और नौकरानी भौरी ही सान्तवना देती है।

नील होस्टल में भी पर्चा का विषय बन जाता है और बात प्रिंसिपल तक पहुँचती है। प्रिंसिपल सुषमा को बुलाकर इस समस्या का स्पष्टीकरण माँगती है और कहती है कि उसने सुषमा से कभी ऐसी उम्मीद नहीं थी और वे उस मामले को वही दबा देना चाहती है। सुषमा प्रिंसिपल के सामने मौन रहती है। उसे यह कहने का अधिकार था कि कोई उसके व्यक्तिगत जीवन में दखल न दें लेकिन वह कहती नहीं है, क्योंकि उसके सामने उसकी पदोन्नति है।

सुषमा अपने कर्तव्य के प्रति सजग रहती है। वह नील से अपने जिम्मेदारियों के बारे में कहती है कि उसे अपनी नौकरी सबसे प्यारी है। सुषमा के जीवन में कुछ ऐसी

महत्वपूर्ण बातें थी जिसे उसने नील के सामने प्रकट नहीं की थी। जैसे उसकी पदोन्नति, जिससे उसके वेतन में एकदम सात सौ रुपयों की बढ़ौत्ती होगी और वार्डनशिप का भत्ता आदि मिलाकर उसे आठ सौ रुपये मिलेंगे जिससे वह अपनी समस्याओं को सुधारने में समर्थ हो सकती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सुषमा अपने व्यक्तिगत जीवन से ज्यादा महत्व अपने परिवार और उनकी सुख सुविधाओं को देती है। नील सुषमा की जीवन समस्याओं से अवगत होकर सब दायित्वों की स्वीकारने के लिए तैयार होता है, लेकिन सुषमा का अचेतन मन सदैव उसके चेतन मन को दबाता रहता है। उसके मन में यह भाव उठता है कि कभी कोई जवान लड़की नील के जीवन में आ जाय तो वह सुषमा को छोड़ सकता है। जिस कारण वह नील से दूर रहने लगती है, लेकिन एक पल के लिए भी वह नील को भूल नहीं पाती है। सुषमा में आये परिवर्तन को सब जान जाते हैं। अब उसके पहले जैसी स्फूर्ति और उमंग के अभाव को देखकर सब सुषमा के धुटन से अवगत हो जाते है।

सुषमा जीवन में एक बहुमूल्य निर्णय लेती है और नील को सुनाती है कि वह नील से कभी शादी नहीं कर सकती। नील को इससे हार्थिक पीड़ा होती है। फिर भी एकनिष्ठ और प्रेमी नील किसी भी प्रकार का हंगामा नहीं मचाता।

इस प्रकार पारिवारिक परिस्थितियों, लोक निन्दा तथा अपनी हीन भावना के दबाव में आकर सुषमा नील से संबंध तोड़ लेती है लेकिन विस्मृत नहीं कर पाती।

कुछ दिनों पश्चात् मालूम होता है कि नील कंपनी की ओर से हॉलिण्ड जा रहा है। रात के दस बजे प्लेन से जानेवाला है। नौ बजे के बाद हवाई अड्डा जाने के लिए टैक्सी

बुलाती है। टैक्सी के आने पर वह अपना इरादा बदल देती है। सुषमा के मानसिक संघर्ष से स्पष्ट होता है कि वह नील को चाहती जरूर है लेकिन अंतिम समय में उससे मिलकर टूटे हुए संबंध को पुन: दृढ़ नहीं करना चाहती है।

2.2. नायिका सुषमा की भूमिका :

प्रस्तुत उपन्यास की नायिका सुषमा मध्यवर्ग में जन्मी ऐसी स्त्री है जो कि आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर है और अपनी माँ पिता व भाई–बहनों का दायित्व वहन करती है। पारिवारिक जिम्मेदारी से दूर नहीं भागती मगर अपनी माँ और पिता के प्रति गहरा आक्रोश है।

मध्यवर्गीय नारी की समस्याएँ संत्रास, दुख और परिस्थितियों के आगे आत्मसमर्पण करने की स्थिति, मज़बूरी, सभी को सुषमा के जीवन में भरा हुआ है। आधुनिक विचारोंवाली एक कुशल प्राध्यापिका है सुषमा। उसका प्रौढ़ एवं प्रभावात्मक व्यक्तित्व दूसरों को प्रभावित करने लायक है। जैसे "उनके हर बात भिन्न थी। सुषमा उनके साथ बात करते हुए भूल जाती थी कि वह एक स्त्री है, एक बहुत ही आकर्षक युवती, खुलकर बोलती, वाद–विवाद करती। उसका मस्तिष्क हर समय जागरूक रहा"[1]।

कर्तव्यपरायणा सुषमा चाहे कार्यालय के क्षेत्र में हो या परिवार में वह अपने उत्तरदायित्वों को निभाने में समर्थ है। परिवार के कर्तव्यों को निभाने के लिए वह अपनी जिन्दगी को न्योछावर करती है। "अगर मैं सबसे बड़ा लड़का होती तो क्या न करती? उसी तरह अब भी करती हूँ। इन लोगों के लिए कुछ करके बडा संतोष सा होता है। अपने लिए तो सभी करते है, छोटे भाई–बहनों को कुछ कर सकूँ, उस योग्य भी तो पिताजी ने ही बनाया है"[2]।

सुषमा अन्दर ही अन्दर बहुत पीड़ा भोग रही है, उसे अपने यौवन के सुनहरे दिनों के बीत जाने का बहुत दुख है। जीविकोपार्जन के यथार्थ को वह कभी–कभी भूलकर कॉलेज की छात्राओं के उमंग भरे जीवन में डूबकर स्वयं ही एक किशोरी महसूस करने लगती है। वह जल्दी ही अपनी विवशता को समझ जाती है कि अब उसकी उम्र अधिक हो गयी है। उसके जीवन में अब आशा और प्रेम की कल्पना का कोई स्थान नहीं है। उसके जीवन की घुटन को निम्नलिखित कथन स्पष्ट करता है – ''नहीं नील नहीं'', सुषमा ने मुट्ठियाँ बन्द करके सोने से भीच ली, यह कॉलेज, यह खम्भे, मेरी डेस्टिनी है, मुझे यहीं छोड दो''[3]। इसके अलावा उसके मन को अब और खालेपन को स्पष्ट करनेवाला और एक प्रसंग है – ''सुषमा का मन बिलकुल रोता था, कहीं कोई हिलोर भी नहीं। विवाह की सारी खुशी उसे अछूता छोड गयी थी''[4]।

सुषमा को अपनी माँ और पिता के प्रति आक्रोश माँ के प्रति बात–बात पर क्रोधित होना, बहन के प्रति उत्पन्न ईर्ष्याभाव सभी उसकी हीन ग्रंथी और संत्रस्त आन्तरिक जीवन को दर्शाता है। उसका विवाह नहीं हो पाया इसके लिए वह अपने पिता को ही दोषी ठहराती है। वह सोचती है – ''यदि पिताजी चाहते तो क्या उसका विवाह नहीं कर सकते थे''[5]।

इस ज्ञान ने सुषमा के अन्दर न जाने कितना कड़वापन भर दिया। सुषमा अपना सारा क्रोध और अविवाहित रहने का आक्रोश अपनी माँ के सिर मंड देती है। उसके अन्तर्मन में यह बात बैठ जाती है कि माँ और पिताजी ने जानबूझकर उसका विवाह नहीं किया। उषाजी ने सुषमा की बहन नीरू के विवाह के पहले जब वर पक्षवाले नीरू को

देखने आते है, उस प्रसंग में सुषमा का आकस्मिक क्रोध दिखाकर उसे मन की ग्रंथी को स्पष्ट किया है। सुषमा माँ से कहती है – "अभी कौन–सा दुख है? भूखी रहती हूँ या तन ढकने को कपडे नहीं है? मैं कुवाँरी रह गयी तो कौन सा आसमान फट पड़ा। इन दोनों को भी अगर शादी न हो सकी तो क्या हो जाएगा"[6]? सुषमा के मन में अपनी माँ और पिता के प्रति दया ही अधिक है। मगर सुषमा के अचेतन मन में बसी हुई बातें परिस्थितियों वश एकदम आक्रोश के रूप में माँ के प्रति प्रकट हो जाती है।

सुषमा में चरित्र में हम एक त्यागमयी नारी की तपस्या देखते है। वह इतनी त्यागमयी है कि अपने भविष्य को अनदेखा कर बन्धुजनों के लिए अपना जीवन दान करती है। भाई बहनों की खुशी में ही वह अपनी जिन्दगी की खुशी देखने की कोशिश करती है। "मैं जो करती हूँ कर्तव्य समझकर नहीं मौसी, उनके प्यार में करती हूँ। मेरा तो मन होता है कि मेरे पास अगर और कुछ होता तो और भी करती"[7]।

सुषमा एक ऐसी नारी है जो दूसरों की भावनाओं, दुखःदर्द को समझने का प्रयास करती है। स्वाति के गर्भपात को लेकर जब अन्य अध्यापिकाएँ बातें करती है तो वह क्रोधित हो जाती है और कहती है – "आपके सामाजिक मापदण्ड यह कहते है कि आप सबके सामने किसी के व्यक्तिगत जीवन की धज्जियाँ उड़ा दीजिए? हरेक का जीवन एक ऐसा अनुलंघनीय दुर्ग है जिसका अतिक्रमण करना किसी का अधिकार नहीं है"[8]।

हालत विपरीत होने पर भी वह कभी बेहमानी का मार्ग अपनाती नहीं है। अर्थाभाव पर भी अपनी इज्जत बनाये रखती है। "निर्धन में भले ही रही होऊँ, पर स्वाभिमानी भी

बहुत रही। जीवन के कभी–कभी ऐसे अवसर भी आये, जबकि मैं अपने शरीर के मोल से धन और आराम पा सकती थी। पर वह मैं ने स्वीकार नहीं किया''[9]।

आधुनिक होते हुए भी सुषमा पुरानी मान्यताओं पर विश्वास रखती है। वह नील को जी–जान से चाहती है। लेकिन जब विवाह को बात आती है तो उसके सामने उम्र की समस्या उठ खड़ी होती है। वह कहती है ''तुम्हारी अभी आयु ही क्या है? मैं तुमसे इतनी बडी भी तो हूँ नील। हमारा विवाह सफल न होगा। मुझे सदा यह विचार डस्ता रहेगा कि कहीं कोई छोटी बहुत सुंदर लडकी मुझसे तुम्हें छीन ले''[10]।

सुषमा की व्यक्तित्व में आधुनिक नारी की दोहरी मानसिकता की झलक है। स्नेहमयी एवं प्रेममयी सुषमा अपना दुःख दबाते हुए खुद असमंजस्य में पड जाती है। प्रेमी को दिल से चाहते हुए भी अविवाहिता रह जाती है। कभी वह सब कुछ भूलकर नील को अपना लेने को सोचती है और कभी नील को उम्र को लेकर वह चिन्ताग्रस्त हो जाती है। यहाँ उसकी मानसिक अंतर्द्वन्द्व का स्पष्ट झलक देखने को मिलता है।

उषाजी के प्रस्तुत उपन्यास, 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' में 'सामाजिक दायित्वों का निर्वाह किया गया है। उन्होंने एक ओर जहाँ सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा विशुद्ध रूप से मानवीय धरातल पर की है तो दूसरी ओर आर्थिक जर्जरता का खुला चित्रण भी किया है। उषाजी ने नारी के आन्तरिक जीवन की हर एक पहलू पर दृष्टिपात किया है। कामकाजी नारी की भागदौड़ से भरी जिन्दगी, जीविकोपार्जन के लिए संघर्ष, जीवन में अतृप्त इच्छाओं के कारण अचेतन में दबा आक्रोश, संघर्ष से उत्पन्न ऊब जीवन की

नीरसता आदि सभी परिस्थितियों को विभिन्न आन्तरिक परिस्थितियों द्वारा स्पष्ट किया है। आन्तरिक जीवन में संघर्ष और ऊब का कारण आर्थिक असुरक्षा और बेचारगी है। यही तथ्य उषाजी की सुषमा के साथ भी सिद्ध होता है।

उषाजी ने प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा नारी जीवन की समस्याओं को उभारा है, उसकी स्वत्व की पूर्ति कहाँ तक पूर्ण हुआ है, विशेषकर आधुनिक नारी की आधुनिक समस्याओं को पारकर वह अपनी स्वत्व को किस हद तक निभा पाई है, सबका चित्रण बहुत खूबी से उजागर किया है।

2.2.1. परिवार में पिता के दायित्व निभानेवाली पुत्री : दायित्व के बहाने

आज की नारी प्राचीन नारी के इस अर्थ में भिन्न है कि वह न तो राशन–पानी जुटाने गए पुरुष की प्रतीक्षा में हाथ पर हाथ धरे चिन्तित–सी बैठी रहती है और न उस द्वारा उपार्जित अत्यल्प धनराशि से गुजारा करने के लिए अपनी व परिवार की आवश्यकताओं को संकुचित करती है। पुरुष के झुके कंधों व थके कदमों को सहारा देने के लिए वह स्वयं अर्थोपार्जन के क्षेत्र में कूद पड़ी है। यदि दुर्भाग्यवश पिता या पति काम करने की स्थिति में न हो तो नारी सुलभ कमनीयता को भुला कर वह स्वयं पिता अथवा पति की भूमिका का निर्वाह करने लगती है। ऐसी औरतें कभी–कभी वक्त से पहले मुरझाने को विवश होती है। हम जो हर तरह के लोगों के रहने को मज़बूर रहती है। वक्त के पहले मुरझाने में के 'पचपन खम्भे लाल दीवारों की नायिका सुषमा भी अभिशप्त है। सुषमा ने यौवन की सहज माँग व आकर्षण को भुलाकर असमय दायित्वों को ओढ लिया है। रिटयार्ड पिता पक्षाघात से पीडित है। दो छोटी बहनें व भाई पढ रहे है। अत : अपने

भविष्य को संवारने के प्रयास में वह कैसे उन सबके भविष्य को मंझधार में छोड दें? यही कारण है कि जब उसे दिल्ली के गर्ल्ज कॉलेज में प्राध्यापिका की नौकरी मिलती है तो लगता है जैसे 'तूफान से बचकर उसकी जीवन–नौका एक शान्त बन्दरगाह पर आ पहुँची है''[11]।

कमाऊ बेटी जब परिवार के पोषण का दायित्व अपने कंजों पर लेकर पुत्र की भूमिका में उतरती है तो माता–पिता प्राय: स्वार्थी हो जाते है और उसकी ओर से निश्चिन्त भी। सुषमा की माँ सुषमा के ढलते यौवन और कौमार्य को देखकर चिन्तित नहीं है। चिन्तित है, यौवन की दहलीज पर खड़ी छोटी बेटी नीरू के विवाह को लेकर। यह एहसास सुषमा के भीतर पीड़ा की सृष्टि करता है। ''उसे लगता है कि वह पैसा कमाने की मशीन मात्र बनकर रह गई है''[12]। विवाह करके परिवार की निराधार छोड़ना उसे सम्भव नहीं जान पडता। अत: वह न प्रिंसिपल को नाराज करने की स्थिति में है, और न प्रेमी नील के विवाह प्रस्ताव को स्वीकार करने की स्थिति में। वह अपनी दृष्टि दो चीज़ों पर केन्द्रित करने को बाध्य है – अगले साल मिलनेवाला सीनियर ग्रेड और वार्डनशिप का अतिरिक्त भत्ता। इसलिए पचपन खम्भे और लाल दीवारों वाले उस कॉलेज को वह छोड़ नहीं सकती। यह उसका बन्दीगृह है और नियति भी।

2.2.2. कामकाजी पुत्री और आश्रित परिवार : सहानुभूति के बहाने

कामकाजी पुत्री का अपने घर में विशिष्ट स्थान होता है। जहाँ पिता किसी कारणवश परिवार का पोषण करने में असमर्थ हो तथा ज्येष्ठ पुत्र आयु में छोटा हो, वहाँ पुत्री को पिता तथा ज्येष्ठ पुत्र की भूमिकाओं का निर्वाह करना होता है। निस्सन्देह ज्येष्ठ

पुत्र की भूमिका पुत्री के लिए सम्मान अर्जित करती है। एकमात्र अर्जक सदस्य होने के कारण माता–पिता सहित पूरे परिवार की आँखें उसकी ओर लगी रहती है। अन्य पुत्रियों की अपेक्षा कामकाजी पुत्री को महत्व भी अधिक दिया जाता है और उसकी बात का मान भी रखा जाता है। बदले में, कामकाजी पुत्री की दायित्व बढ जाते है। व्यक्तिगत सुख–दुख की चिन्ता न करके उसे परिवार के कल्याण की चिन्ता करनी होती है। फिर भी, ज्येष्ठ पुत्र से उसकी भूमिका में अंतर है और वह यह कि लाचार माता–पिता स्वार्थातुर होकर उसे पूरी तरह अपनी मुट्ठी में करना चाहते है। पुत्र पर एकाधिपत्य जमाते हुए भी उनकी दृष्टि पुत्र के सुख एवं भविष्य पर अवश्य टिकी होती है जिसकी परिणति पुत्र के विवाह में देखी जा सकती है। किंतु कामकाजी पुत्री के विवाह की शारीरिक, सामाजिक व भौतिक आवश्यकता के औचित्य को स्वीकारते हुए भी वे उसके विवाह का प्रसंग नहीं उठाना चाहते। कारण है, हमारी सामाजिक व्यवस्था जो विवाह होते ही लडकी तथा उसके मन पर माता–पिता के अधिकार को समाप्त कर देती है। अत: आर्थिक दृष्टि से पूरी तरह पुत्री पर आश्रित माता–पिता के सामने दो विकल्प होते है – पुत्री का विवाह करके स्वयं भूखों मरना अथवा उसका शोषण कर परिवार के अन्य सदस्यों का पालन–पोषण करना।

सुषमा भी माता–पिता के शोषण की शिकार बन जाती है। सुषमा गर्ल्ज़ कॉलेज में प्राध्यापिका है तथा होस्टल की वार्डन भी। पिता पक्षाघात से पीड़ित है। छोटे चार भाई–बहन है। माँ स्वार्थी एवं आत्मकेन्द्रित है। प्रारम्भ से ही वह ऐसी थी अथवा परिस्थितियों ने उसे स्वार्थी एवं संकीर्ण बना दिया है, यह निश्चित नहीं; किन्तु वर्तमान

परिप्रेक्ष्य में वह अवश्य रवार्थी है। सुषमा की आय से घर चलता है और आय के एकमात्र स्रोत को माँ किसी भी हालत में खोना नहीं चाहती। इसलिए सुषमा के विवाह का प्रसंग भूल कर भी नहीं करती। प्रसंग चल भी जाए तो सुषमा पर सारा दोष डाल स्वयं एक किनारे हो जाती है कि "जब सुषमा ही विवाह करने को राजी नहीं होती तो मैं क्या करूँ। सुषमा माँ की इस निर्लिप्तता के मूल को बढकर कोसनेवाले का मुँह बन्दकर देती है – इन लोगों के लिए तो भी करते है। छोटे–भाई–बहनों का कुछ कर सकूँ, उस योग्य भी तो पिताजी ने ही बनाया है"[13]। सुषमा परिवार के लिए कुछ करके 'सन्तोष' प्राप्ति की बात कहती है। किंतु वास्तव में ऐसा है नहीं। एक अधूरापन उसे बार–बार कचोटता है। पूर्व स्वप्न–पुरुष नारायण की सुखी गृहस्थी देख इस कचोट की छाया उसके मुख पर फैल जाती है। नील से परिचय, परिचय का प्रगाढ सम्बन्ध में बदलता, नील का उसके जीवन का आधार हो जाना – सुषमा के जीवन के अधूरेपन की भरने लगते है। लेकिन सुषमा सुख को आनन्दपूर्वक भोग नहीं सकती। इसके तीन कारण है – सर्वप्रथम, पारिवारिक दायित्व उसके व नील के सम्बन्धों में आडे आ जाते है। वह नील के आगे स्वयं की पूरी तरह खोल नहीं पाती। नील से सदा उसके एक ही शिकायत रहती है कि "मैं तुम्हारे अस्तित्व की केवल परिधि ही दूर सका हूँ"[14]। दूसरे सुषमा हीन भाव से ग्रस्त है। हीनभाव का कारण है, नील का उसकी पाँच वर्ष छोटा होना। नील के विवाह प्रस्ताव को चाहकर भी वह गम्भीरतापूर्वक नहीं ले पाती क्योंकि उसे भय है, जीवन में कभी नील अपने से बड़ी युवती से विवाह करने की भूल पर पश्चाताप न करे। तीसरे, सुषमा लोकापवाद से भय खाती है। वह जिस कॉलेज में नौकरी करती है, वहाँ किसी की निजी जिन्दगी नहीं है। वहाँ व्यक्ति को कॉलेज के अनुशासन और नैतिक वर्णनाओं में बंधकर

जीना होता है। सुषमा–नील–सम्बन्ध कॉलेज की आचार–संहिता में दंडनीय अपराध है और दण्ड एक है – नौकरी से त्यागपत्र। ये तीनों कारण मिलकर सुषमा को मानसिक रूप से रुग्ण कर देती है। वह आत्मपीड़न में सुख पाने लगती है। कॉलेज उसे बंदीगृह जान पडता है और इसी बंदीगृह में जीना अपनी नियति। नील इस बंदीगृह से निष्कृति का मार्ग सुलझाता है तो अपने ही तर्कजाल में उलझकर वह उस मार्ग को बन्द कर देती है। नील सुषमा के जीवन के सबसे बडे दायित्व को अपना दायित्व बनाने को तैयार है। विवाहोपरान्त उसके परिवार के लिए सब कुछ पूर्ववत् करते रहने का वचन देता है। माता–पिता, भाई–बहनों के लिए सुषमा को नौकरी करने की आवश्यकता नहीं। किंतु वह नील से प्रेम का इतना बड़ा मूल्य चुकाने को नहीं कह सकती। वह जीवन में अपने लिए खुशियों की कल्पना कर सकती है। उन्हें मूर्तरूप नहीं दे सकती। हाँ, नील से संबंध तोडकर वह अपनी सहकर्मियों और छात्राओं को प्रसन्न कर सकती है। इस सम्बन्ध–विच्छेद के पश्चात् सीनियर ग्रेड और वार्डनशिप का अतिरिक्त भत्ता लेकर अपने परिवार को चिन्तामुक्त कर देना चाहती है। नील को दुत्कारने का वचन देकर नील के माता–पिता को उपकृत कर देना चाहती है।

संक्षेप में सुषमा में त्याग व शहादत का इतना अधिक प्राचुर्य है कि जीवन के प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण उसने खो दिया है।

2.3. आधुनिक नारी की समस्याएँ – "पचपन खम्भेलाल दीवारें" के संदर्भ में

साहित्य और मनुष्य का संबंध अनादिकाल से है। इसलिए मानव की समस्याओं की व्याख्या आधुनिक साहित्य में प्राप्त होती है। आधुनिक उपन्यास में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, पारिवारिक, मनोवैज्ञानिक आदि समस्याएँ उभर आती है।

साहित्य आम व्यक्ति के जीवन की व्याख्या करता है। वह समाज की चेतना में सॉस लेता है। इसी से उसमें जीवन देने की शक्ति आती है। मानव जहाँ सामाजिक समस्याओं, विचारों तथा भावनाओं का सृष्टा होता है वह उनसे स्वयं भी प्रभावित होता है। सामान्यत : व्यक्ति को समाज की नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक समस्याओं को सुलझाना पड़ता है। इस तरह से साहित्य मानव के सामाजिक संबंधों को और भी स्पष्ट करता है। जीवन की पूर्णता के लिए समाज की उन्नति के लिए साहित्य सबसे प्रभावशाली साधक है। कोई भी साहित्यकार समाज की समस्याओं की उपेक्षा नहीं कर सकता। उन्हीं समस्याओं के आधार पर साहित्य की रचना होती है।

प्रस्तुत उपन्यास "पचपन खम्भे लाल दीवारे" में सामाजिक दायित्वों का निर्वाह किया गया है। उन्होंने एक ओर जहाँ सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा विशुद्ध रूप से मानवीय धरातल पर की है तो दूसरी ओर आर्थिक जर्जरता का खुला चित्रण भी किया है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका को नारी जीवन की समस्याओं को उभारा है विशेषकर आधुनिक नारी की आधुनिक समस्याओं को उन्होंने विशेष महत्व दिया है।

2.3.1. अकेलेपन की समस्या :

वर्तमान युग की नारी आत्मनिर्भर है। वह किसी पर भार बनना नहीं चाहती। आधुनिक समाज में एकाकी नारी जीवन का प्रचलन बढ रहा है। समाज एकाकी नारी के जीवन में विभिन्न प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न करता है। इन सभी कष्टों के होते हुए भी आज कुछ नारियाँ एकाकी जीवन व्यतीत करती है।

प्रस्तुत उपन्यास 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' का सबसे प्रमुख स्वर अकेलेपन का है। उपन्यास की नायिका सुषमा और उसके सहकर्मी मिस शास्त्री के जरिये उपन्यास में व्याप्त अकेलेपन के भाव की उभारा है। सुषमा एकाकी जीवन जीने को विवश है क्योंकि उसपर परिवार का दायित्व है। सुषमा के जीवन में नील का प्रवेश होता है जिसे वह प्यार करने लगती है। कुछ कारणवश वह उससे शादी नहीं कर पाती। अपने नील के साथ संबंध कट जाने पर उसका अकेलापन और भी बढ़ जाता है। जैसे "उसकी उंगलियाँ आगे बढ़ी और किसी को बिना छूए लौट आयी। उसे पहली बार अपने अकेलेपन का इतना एहसास हुआ। उसे लगा कि सब कुछ उसे अकेले ही झेलना है"[15]।

वह उस अकेलेपन को मिटाने का प्रयास करती है। कभी वह सोचती है कि किसी धनी व्यक्ति से शादी करके वह अपने अधूरे जीवन को पूर्ण करेगी। नहीं तो अकेलेपन को दूर करने के लिए किसी जानवर को पालने का निश्चय कर लेती है। जैसे "मेरी निष्कृति का कोई संभावना नहीं मोनाक्षी। पैंतालीस साल की आयु में मैं भी एक कुत्ता या बिल्ली पाल लूँगी। उसे सीने से लगाकर रखूँगी"[16]।

सुषमा की सहकर्मी अध्यापिका मिस शास्त्री का कौमार्य अकेलेपन को गुज़र जाता है। मिस शास्त्री अकेलेपन से इतना अधिक व्याकुल है कि वह दूसरों की खुशी नहीं देख सकती। किसी की खुशी को दुख में परिणत करने में ही वह खुश अनुभव करती है। "मैं तो कहती हूँ कि जो काम अपने से न संभले, इन्सान दूसरे को करने दो। तुम्हारा मन नहीं लगता है तो इस्तीफा दे दो। कॉलेज की अडतालीस अध्यापिकाओं में क्या वार्डन बनने को कोई राज़ी न होगी"[17]।

इस तरह हम देखते है कि समाज रूपी यह विशाल भवन परिवार रूपी ईट पर आधारित है। वस्तुत : परिवार ही सामाजिक जीवन का मूलाधार है। नि:सन्देह आज के परिवार में समयानुकूल परिवर्तन आ चुके है और आते जा रहे है। एक गृहस्थ समाज की जितनी सेवा कर सकता है उतना एकाकी व्यक्ति नहीं करता है। अकेलेपन का भाव व्यक्ति को मानसिक एवं शारिरिक रूप में विकलांग बना देता है।

2.3.2. अविवाहिता नारी की समस्या :

विवाह संबंधी समस्याएँ भारतीय समाज में चिर काल से आ रही है और चिरकाल तक चलती रहेगी।

अविवाहिता नारी की समस्या न तो कन्या की समस्या है और न जीविकोपार्जन करनेवाली नारियों की समस्या है। अविवाहिता नारी के लिए यह आवश्यक है कि उसकी कल्पना ऐसी परिस्थितियों में की जाय, जहाँ विवाह की सामाजिक अनुमति अथवा सामाजिकता का सर्वथा अभाव हो, यह भी संभव है कि वह वस्तुनिष्ठ या आत्मनिष्ठ कारणों से स्वयं विवाह की उपेक्षा करे और एकाकी जीवन बिताने की अपेक्षाकृत श्रेयस्कर माने।

''पचपन खम्भे लाल दीवारे'' उपन्यास में भी अविवाहिता नारी की समस्या उभर आती है। सुषमा पढ़ी–लिखी नौकरीपेशा युवती है। वह पारिवारिक समस्याओं के बोझ के कारण अविवाहिता रह जाती है। सुषमा परिवार के लिए दुहना गाय मात्र है। घर में कमानेवाली सिर्फ सुषमा मात्र है। इसलिए उसके माँ–बाप अपने निजी आग्रह की पूर्ति के लिए सुषमा का विवाह नहीं कराते।

वैवाहिक जीवन चाहते हुए भी सुषमा समाज एवं परिवार से डरकर अपने आग्रह को दबा देती है। इन दबावों से वैवाहिक जीवन की इच्छा होते हुए भी अविवाहिता जिन्दगी की चाह को प्रकट करती है। जैसे – "आप भी मौसी, किसी पचड़े को ले बैठी। जीवन में बहुत महत्वपूर्ण काम है सिर्फ विवाह ही तो नहीं। और देशों में देखिए बिना शादी किये ही औरतें कैसे मज़े में रहती है"[18]। अविवाहिता रहने पर उसे अपने जीवन में सूनेपन का एहसास होता है। इस सूनेपन एवं अकेलेपन में सुषमा का दम घुटने लगता है। वह इस अकेलेपन को मिटाना चाहती है। वह सोचती है कि "यदि कुछ परिस्थितियों वश सुषमा का विवाह न टल गया होता तो आज उसके भी सब कुछ होता – एकांत शामों का साथी, घर, मोटर, बच्चे ....."[19]।

सुषमा को अपने जीवन में कोई मक्सद नज़र नहीं आता है। सुषमा अपने लिए न जीकर किसी दूसरे के लिए जीने लगती है। उसके सूखे जीवन को पल्लवित करना भी वह नहीं चाहती। वह अपनी उदास सूनी जिन्दगी को उदासी में ही गुजार देना चाहती है। जैसे सुषमा कहती है – "आज से सोलह साल बाद शायद तुम अपनी बेटी को लेकर इस कॉलेज में आओ, तब भी मुझे यही पाओगी। कॉलेज के पचपन खम्भों की तरह स्थिर अचल ....."[20]।

प्रस्तुत उपन्यास में मिस शास्त्री भी अविवाहिता नारी है। विवाह न होने के कारण वह बिलकुल "फ्रस्ट्रेटड' हो जाती है। यही 'फ्रस्ट्रेशन' उसके अन्दर प्रतिकार के भाव को जन्म देता है। यह एक तरह से मनोवैज्ञानिक सत्य भी है कि जब जीवन में कोई अभाव उत्पन्न होता है तो उस अभाव से जीवन कुंठित हो जाता है और हर किसी के प्रति बदले का भाव उत्पन्न होता है।

सुषमा और मिस शास्त्री के माध्यम से अविवाहिता नारी की समस्या को मनोवैज्ञानिक ढंग से अभिव्यक्ति मिली है। सुषमा की समस्या जीविकोपार्जन करनेवाली अविवाहिता नारी की समस्या है। अववाहिता सुषमा और मिस शास्त्री जैसे पात्र, विवाह की चाह होने पर भी प्रेम करते और जीवन में किंचित उदारतापूर्ण यौन संतुष्टि की भावना से मुक्त नहीं हो पाती।

हमारे समाज में सुषमा और मिस शास्त्री जैसी अनेक अविवाहिताएँ है जो मज़बूरीवश अविवाहिता जीवन जीने को विवश है और यही विवशता उनके मन में अनेक कुंठाओं को जन्म देती है।

2.3.3. प्रेम संबंधी समस्याएँ :

परिवर्तन से कई मोडों से गुजरने पर भी समाज आज भी प्रेम को मान्यता नहीं देता। ऐसे अनेक लोग है जो भावनाओं, आकांक्षाओं की परवाह न करके प्रेम के नाम पर खिलवाड करते है। समाज की दृष्टि में सुषमा का प्रेम संबंध अनैतिक रहा है। जो सुषमा के लिए मूल्यवान है वह समाज के सामने तुच्छ एवं मूल्यहीन है। "जो कुछ उसके लिए अमूल्य और स्वर्गिक था, दुनिया की आँखों में वह कितना सस्ता और उपहासास्पद बन गया है"[21]।

सुषमा की अलग सी पहचान एवं व्यक्तित्व होते हुए भी वह समाज से हटकर प्रेमी के लिए वकालत करने में असमर्थ रह जाती है। सुषमा के प्रेम को लेकर सहकर्मी फिजूल बातें प्रिंसिपल तक पहुँचाते है। प्रिंसिपल के पूछने पर सुषमा अपनी सफाई पेश नहीं करती, उस समय उसके सामने उसका परिवार और पदोन्नति की बात घूमने लगती है।

जिस कारण वह अपने प्रेम की सफाई नहीं देती है। प्रिंसिपल की बात सुनकर उसके आगे तेजी से विविध मुख दौड गये – विवाह की तैयारियों में व्यस्त अम्मा, नीरू, प्रतिमा और नील। वह उसी प्रकार सिर झुकाये, कंधों पर न जाने कितना भार लिये प्रिंसिपल के आफिस से निकल आयी''[22]।

सुषमा और नील के प्रेम की असफलता का एक प्रमुख कारण सुषमा का संदेह है। सुषमा से नील पाँच साल छोटा है जिसके कारण से उसे सदैव सन्देह है कि कहीं नील उसे छोड न जाये। ''डर तो मुझे लगाना चाहिए कि कहीं कोई अठारह–बीस की सुन्दर लड़की तुम्हें छीन न ले''[23]। सुषमा का यह अविश्वास एवं सन्देह हमेशा प्रेम को पनपने नहीं देता है। सुषमा को हमेशा लगता है कि उसका नील के साथ का वैवाहिक जीवन कभी सफल नहीं होगा।

आज नारी की मानसिकता इतनी बदल गयी है कि वह प्रेम तोलकर करती है। लेकिन आज के युग में प्रेम तो करते है पर वे लोग अपयश से भी डरते है। हमारे यहाँ हमेशा से ही प्रेम संबंध को शक की नज़र से देखा जाता है और प्रेम करनेवालों को समाज का ताना तो सहना पड़ता ही है, भले ही उनका प्रेम शादी में परिणत क्यों न हो।

2.3.4. आर्थिक समस्या :

आज का युग अर्थ प्रधान है। अर्थाभाव के कारण मानव की अनेक आकांक्षाएँ अपूर्ण रह जाती है। यह अपूर्णता मानव मन में अभाव को पनपने देती है। आर्थिक विषमता मानव जीवन को कठिन बना देती है क्योंकि शिक्षा संस्कार, अधिकार, चेतना आदि

आर्थिक दशा पर निर्भर है। इसके अभाव में समाज में अनेक बुराइयाँ, जातिगत द्वेष, पूँजीवाद, वर्ग संघर्ष, अनमेल विवाह, बाल विवाह आदि फैलते है। इस अर्थ प्रधान युग में अर्थ प्राप्ति हेतु व्यक्ति निम्न से निम्न स्तर पर भी उतर सकता है। यही विभिन्न समस्याओं का मूलाधार है।

प्रस्तुत उपन्यास की सारी समस्याएँ अर्थाभाव से उपजी हुई है। सुषमा की वैयक्तिक समस्या, कुंठा, संत्रास, अकेलापन, अविवाहिता रहने का कारण आदि के पीछे अर्थाभाव की समस्या है। परिवार का सारा दायित्व सुषमा के कंधों पर है जिस कारण अपनी खुशी के लिए वह परिवार को त्यागना नहीं चाहती। परिवार की खुशी और उनके आर्थिक स्तर को सुधारने के लिए वह अपने ऊपर लगाये गये लांछन को सुनकर भी मौन रहती है। क्योंकि यदि वह अपनी सफाई प्रिंसिपल के समाने पेश करती तो उसकी पदोन्नति रुक जाती। सुषमा यह सोचकर छुप हो जाती है कि उसके वेतन में बढ़ौती होगी तो वह और भी अच्छी तरह अपने परिवार की समस्याओं को सुलझ सकती है। यहाँ हम देख सकते है कि अर्थाभाव की समस्या किस प्रकार इन्सान को पंगु बना देती है।

2.3.5. नौकरीपेशा नारी की समस्या :

अधिकतर पढी लिखी स्त्रियाँ आवश्यकता पड़ने पर परिवार को चलाने के लिए और यों ही नौकरी करना चाहती है और अक्सर करती है। इसका कारण बदलती हुई आधुनिक जीवन दृष्टि है। वे नहीं चाहती कि उन्हें किसी भी दासता के जीना पड़े। परोपजीवी होने से उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व की चेतना सार्थक नहीं होगी।

नौकरीपेशा नारियों की समस्याओं में एक तो सहकर्मियों के साथ के संबंध से होता है। कार्यालयों में काम करनेवाले सहकर्मियों के आपस का संबंध गहरा होता है। इसमें विवाहिता महिलाओं और अविवाहिता लड़कियों के अपने अपने दायरे होते है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इनकी समस्याएँ अलग–अलग होती है। विवाहिता नारियों को घर के देखमाल के साथ–साथ कार्यालय के काम को भी निभाना पड़ता है। इससे उत्पन्न अनेक समस्याएँ है। लेकिन अविवाहिता नारी की इस प्रकार की दोहरे जिम्मेदारियों को निभाना नहीं पडता है। प्रस्तुत उपन्यास में विवाहिता महिलाएँ घरेलु समस्याओं को लेकर किस प्रकार चिन्तित रहती है। उसका स्पष्ट रूप यहाँ द्रष्टव्य है। ''मैं तो थर्ड पीरियड के बाद रुकुँगी नहीं, बेबी बहुत रोती है''[24]। इस प्रकार जब विवाहिता नारियाँ दफतर में आकर घरेलू समस्याओं को लेकर कुछ 'एडजस्ट' करती है तो अविवाहिता नारियों को चिढ़ होने लगता है। वे उन पर ताने मारने लगती है। जैसे ''नौकरी है कि घर की खेति? बेबी का ख्याल है तो घर बैठ''[25]।

नौकरी तो आर्थिक अभाव को मिटाने के लिए सहायक है। नारी के साथ–साथ सब की नौकरी से मिलनेवाले अधिकारों पर भी रहती है। प्रस्तुत उपन्यास में भी ऐसी समस्या है। हास्टल वार्डन पद पर सबकी नज़र रहती है। इस पद से काफी लाभ है जैसे रहने के लिए अलग सा मकान, नौकर आदि मोहक सुविधाओं से सब लोग आकर्षित रहते है। इसलिए लोग इसे पाने के लिए कोई भी रास्ता अपनाने में हिचकते नहीं हैं। ''अरे वह तो चुटकियों का काम है। मिस शास्त्री ने कहा, प्रिंसिपल तक रिपोर्ट पहुँच जाये तो बस काम बना समझो। सर्वीस का तो कॉन्ट्रेक्ट होगा, पर वार्डनशिप छोड़ने को तो विवश किया हो जा सकता है''[26]।

इस प्रकार नौकरीपेशा नारी को घर और दफतर में विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

2.4. निष्कर्ष :

समाज की विभिन्न संस्थाओं में परिवार का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। वस्तुत: समाज के उत्थान और पतन का मूलाधार परिवार ही होता है। व्यक्ति के पारिवारिक संस्कार ही उसके व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं और यही व्यक्ति व समाज का निर्माण करने में सहायक होता है। परिवार में ही व्यक्ति–व्यक्ति के बीच एक सूत्रता स्थापित होती है। माता–पिता, भाई–बहन, पति–पत्नी आदि सभी सम्बन्धों में अटूट आस्था और दृढ़ता के दर्शन होते हैं। पारिवारिक जीवन में अनेक समस्याएँ भी होते है। उषाजी ने मध्यवर्गीय परिवारों में उत्पन्न पारिवारिक समस्याओं को और उन समस्याओं को उनकी नायिकाएँ कैसे सामना करती है? उनके स्वत्व का विकास किस हद तक हुआ है, इन सभी विषयों को सहज रूप से चित्रित किया है।

उषा प्रियंवदा ने प्रस्तुत उपन्यास की नायिका सुषमा की वेदना का चित्रण गहराई से किया है। वह अपना सब कुछ दूसरों पर लुटाती रहती है। खाली होती जाती है और अकेलेपन का एहसास उसे तोड़ता जाता था। उसकी जिन्दगी में कहीं कोई भी न था जिसके साथ वह शेयर करती। माँ समझती कि बेटी सुखी है। अत: वह उसकी ज़रा भी परवाह न कर अपने दूसरे बच्चों के बारे में ही सोचती रहती। सुषमा प्राय: उपेक्षित सा अनुभव करने लगती थी। वह चाहती थी कि माँ उसके जीवन में आ गये बिखराव को कुछ तो समझने का प्रयत्न करे। वैसे वह सबसे दूर अलग रहकर दिल्ली में नौकरी

करती थी। अकेले ही। तब उसे अपने अकेलेपन का एहसास बड़ी तीव्रता से होता था। "सुषमा को प्रेमी .....? चाहिए था"[27]। उसे पति की आकाँक्षा भी न थी पर कभी–कभी उसका मन न जाने क्यों डूबने लगता। अपने परिवार का बोझ अपने ऊपर लिए सुषमा काँपने लगती। तब वह चाह उठती कि दो बाहें उसे भी सहारा देने को हो; नीरवता में कुछ उस्फुट शब्द उसे भी सम्बोधन करें।

नील के आने पर उसका यह खालीपन दूर हो गया था। परन्तु फिर उसके जाने के बाद वह स्थिर हो जाती है। वह सोचती है कि "नील के बगैर मैं कुछ भी नहीं हूँ, केवल एक छाया, एक, खोये हुए स्वर की प्रतिध्वनि और अब ऐसे रहूँगी मन की वीरानियों में भटकती हुई"[28]।

यह अकेलेपन का एहसास आधुनिकता की ही देन है। सुषमा के पूरे व्यक्तित्व का प्रभाव स्वस्थ पड़ता है। सुषमा अपनी जिन्दगी के निर्णय स्वयं लेती है तथा उनके परिणाम भी सहती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. उषा प्रियंवदा, पचपन खम्भे लाल दीवारें, पृ. 25
2. ––वही–– पृ. 10
3. ––वही–– पृ. 104
4. ––वही––पृ. 106
5. ––वही––पृ. 33
6. ––वही––पृ. 79
7. ––वही––पृ. 10
8. ––वही––पृ. 25
9. ––वही––पृ. 53
10. ––वही––पृ. 100
11. ––वही––पृ. 35
12. ––वही––पृ. 83
13. ––वही––पृ. 11
14. ––वही––पृ. 54
15. ––वही––पृ. 99
16. ––वही––पृ. 96
17. ––वही––पृ. 24
18. ––वही––पृ. 10
19. ––वही––पृ. 22
20. ––वही––पृ. 96
21. ––वही––पृ. 100
22. ––वही––पृ. 98
23. ––वही––पृ. 93
24. ––वही––पृ. 54
25. ––वही––पृ. 56
26. ––वही––पृ. 78
27. ––वही––पृ. 28
28. ––वही––पृ. 28

तृतीय अध्याय

रुकोगी नहीं राधिका : पुरुष वर्चस्व से मुक्त होने की छटपटाहट

रुकोगी नहीं राधिका : पुरुष वर्चस्व से मुक्त होने की छटपटाहट

3.1. परम्परागत आदर्श रूप तथा आधुनिक नारी :

आधुनिक शिक्षा के प्रसार एवं प्रचार के फलस्वरूप इस आधुनिक युग में नारी के व्यक्तित्व का यथेष्ट विकास हुआ है। उसे एक नवीन दृष्टि मिली है और उसका विवेक भी जागृत हुआ है। आज नारी को अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ है। और उसका मन प्राचीन रूढियों के बन्धन से मुक्त होकर अपने विकास के स्वप्न देखने लगा है। नारी के व्यक्तित्व के इस विकास के कारण कई विसंगतियाँ भी उत्पन्न हो गई है। तथापि नारी की परम्परागत मान्यताएँ बराबर बदलती जा रही है और उसके जीवन में नवीन संदर्भों का समावेश होता जा रहा है। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी पुरुष के साथ गतिशील है। वह अपने को मानसिक तथा शारीरिक रूप से सबल बनाती जा रही है। राजकीय विधानों में भी उसकी सबलता का पोषण किया है।

जीवन के नवीन संदर्भों को अपनाने के फलस्वरूप नारी के मान्यताएँ आज बदल गई है। बरसों से जो नारी गृललक्ष्मी के पद पर प्रतिष्ठित रही है आज अपने साथ चिपके इस उपनाम को उतार कर नये रूपों में सामने आ रही हैं। उसके अस्तित्व को आज नई अर्थ मिल रही है। उसने पुरुष–प्रधान समाज की उन सभी मान्यताओं को ठुकरा दिया है जो उसे पुरुष–संचार से मुक्त नहीं होने देती।

आज के समाज में भी प्राचीन भारतीय आदर्शों के मूल तत्व विद्यमान है किंतु उन पर बाह्य प्रभावों के परिणाम स्वरूप नारी में जागृती आ गई है। इस परिवर्तन का कारण

यह है कि प्राचीन परम्परायें अब रूढियों का स्थान ले रही है और कई बार अन्धविश्वास का रूप भी धारण करती है जो आज की जागृत नारी को सह्य नहीं है। इनके प्रति विश्वास करना वह अपने लिए तथा समाज के लिए घातक समझ रही है। इसलिए वह पारम्परिक आदर्शवाद का चौला उतारकर आधुनिक बनने की चेष्टा कर रही है। यहाँ आधुनिक बनने से यह अभिप्राय नहीं है कि नारी शील और संकोच का त्याग करें। आधुनिकता उसके विचारों में आनी चाहिए। आधुनिक वही है जो सोच–समझ कर जीवन जीता है। आधुनिक कहलानेवाले व्यक्ति के विचार विनाशकारी न होकर विकासोन्मुख एवं प्रगतिशील होना चाहिए।

3.2. परिस्थितियों के बदलाव के फलस्वरूप नारी की विचारधारा में परिवर्तन

साठोत्तरी युग में देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों में पर्याप्त परिवर्तन आ गया है। वास्तव में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त ही देश में उल्लेखनीय परिवर्तन आ गया है। आज परिवार और समाज सम्बन्धी परम्परागत मान्यताएँ टूटती जा रही है और इनका स्थान नई मान्यताएँ ले रही है। जीवन मूल्य बदल रही है, समाज में कई ऐसी विषमताएँ उत्पन्न हो गई है जिनके कारण हमारे जीवन में पर्याप्त बिखराव आ गया है। इन बदलती हुई परिस्थितियों से आज नारी अछूती नहीं रही है। बदलती परिस्थितियों के फलस्वरूप नारी की विचारधारा में भी अनेक परिवर्तन आ गये है। जिनको आलोच्यकाल के उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में विविध रूपों में प्रस्तुत किया है। आज नारी सभी सामाजिक एवं धार्मिक आडम्बरी का बहिष्कार कर रही है और इन्हें खोखला सिद्ध करने का प्रयास कर रही है। रूढ़, धार्मिक एवं सामाजिक

संस्कारों को नारी अपने प्रति तथा समस्त समाज के प्रति घातक समझ रही है। आधुनिक शिक्षा ने नारी को अस्तित्व की रक्षा के हेतु पर्याप्त सचेत किया है। डॉ. सरला दुआ के विचारानुसार – "इस गतिशील युग की नारी अपने को सतंत् सफल बनाने की चेष्टा में है। शिक्षिता नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग है और वह अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं करके अपनी स्थिति की उच्च बनाने में संलग्न है। परदे में ही रह कर रक्त के आँसू बहाना प्रतितिकर नहीं समझते तथा यह अवागुण्ठन उसें सहन नहीं"[1]।

आज नारी में इतना बदलाव आ गया है कि वह परंपरागत नारियों के समान संज्ञाहीन और पंगु नहीं है कि पुरुष अकेले ही उसके भविष्य निश्चय कर ले। आदिकाल से आज तक की जीवन यात्रा में साथ देकर, उसके अभिशापों को स्वयं डोलकर और अपनी अनुभव से जीवन में अनंत शक्ति भरकर नारी ने जिस अस्तित्व, व्यक्तित्व चेतना और हृदय का विकास किया है, उसी का पर्याय नारी है। आधुनिक नारी की बदलती हुई यह नई चेतना ही उसे श्रद्धा से 'इड़ा' बनने में मज़बूर कर रही है।

3.3. रुकोगी नहीं राधिका : कथावस्तु

स्वातंत्रयोत्तर काल के उपन्यास यात्रा में एक नया मोड आ गया है। इस काल का उपन्यास, हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति मध्यवर्गीय समाज की बदलती स्थितियों से प्रभावित हुआ। उपन्यासकारों की नई पीढी ने इन स्थितियों को तीव्रता से अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया। इन उपन्यासों में जीवन्त कथानकों और पात्रों का निर्माण हुआ है। वे कथानक के 'रुकेगी नहीं राधिका' में भी तत्कालीन युगीन समस्याओं को सजीव रूप में प्रतिपादित किया गया है। इसमें नारी मुक्ति, अस्तित्वबोध, पारिवारिक

विघटन, अहं, कुंठा, संत्रास, अकेलापन, अजनबीपन, अंतमुखी, वैयक्तिकता, निराशा और विवशता तथा नैतिक मूल्यों का ह्रास आदि आधुनिक जीवन की समस्याओं को स्थापित किया गया है।

'रूकोगी नहीं राधिका' में आधुनिक भारतीय शिक्षित नारी की दुविधा ही मुख्य कथावस्तु है। उपन्यास की नायिका राधिका एक ऐसी दुविधा से घिरी नारी है जो अपनी दिशा तय नहीं कर पाती है। राधिका विदेश जाती है और तीन सालों के बाद वहाँ से भारत आती है। लेकिन हर कहीं उसको अकेलापन महसूस होती है। राधिका यह तय नहीं कर पाती है कि वह विदेश में रहे या भारत में। एक विचित्र अनिश्चितता और सारहीनता की भावना छायी रहती है।

छोटी आयु में ही माँ का स्वर्गवास होने से राधिका के मन में अपने पापा के प्रति गहरा आकर्षण उत्पन्न होता है। राधिका अपने पापा के जीवन के किसी भी क्षण को किसी दूसरे के साथ बाँटते नहीं देखना चाहती है। उसके पिता अठारह वर्ष का एकाकी जीवन व्यतीत करने के बाद राधिका के ही हम उम्रवाली विधा से विवाह करते हैं। जिसे राधिका बरदाश्त नहीं कर पाती है। फलत : वह पिताजी से झगडा करके डैन नामक एक विदेशी पत्रकार के साथ अमेरिका चली जाती है और उनके ही संरक्षण में रहती भी है। डैन उसमें अपनी खोयी हुई पत्नी को ढूँढता है और राधिका डैन में अपने पिता को, लेकिन दोनों असफल होते हैं और डैन राधिका को छोड देता है। शिक्षा समाप्त कर राधिका वापस आती है। भारत आकर भी राधिका अकेलापन महसूस करती है। एयरपोर्ट में उसे लेने के लिए पापा, विमाता, भाई–भाभी कोई नहीं आता है। विमाता विधा द्वारा भेजा गया

अक्षय उसे एयरपोर्ट से अपना फलैट ले जाता है। रात की गाड़ी से राधिका अपने पापा के पास जाती है लेकिन पापा उससे ठहरने के लिए नहीं कहते हैं। पापा और विधा के साथ वहाँ रहना राधिका पसंद नहीं करती है। इसलिए वह दिल्ली चली आती है और अक्षय उसके लिए अपने पासवाली फलैट ले देता है। राधिका और अक्षय की मित्रता गहरी हो जाती है। दोनों एक दूसरे को चाहने लगते है। किंतु अक्षय राधिका के अतीत के प्रति शंकाशील है और राधिका उसकी दुविधा को दूर करने का प्रयास भी नहीं करती है। राधिका का मनीश के साथ घूमना–फिरना उसके संदेह को और अधिक बढा देता है। राधिका के संबंध में चिन्तन करते हुए अक्षय ने मन–ही–मन कल्पना की कि वह राधिका से कह रहा है, ''देखो राधिका, मुझे तुमसे लगाव है, पत्नी रूप में तुम्हारी कामना भी आरंभ में मेरे मन में दबी रही है, पर तुम्हे पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पाता। तुम्हारे अतीत को लेकर मेरे मन को कुछ निरंतर काटता रहा है। सच कहो राधिका, क्या मनीश भी तुम्हारी प्रेमी....???[2] अपनी इस परंपरावादी सोच के कारण राधिका से आकर्षित होकर भी वह उसे प्राप्त नहीं कर पाता।

एक रेस्तराँ में राधिका मनीश से मिलती है, जिसे वह विदेश में भी जानती थी। राधिका मनीश को नहीं चाहती है, क्योंकि इससे पूर्व वह दो तीन युवतियों के जीवन से खिलवाड़ कर चुका है। किंतु मनीश उसे चाहता है और उसके अतीत सहित उसे अपनाने को तैयार होता है। मनीश उससे कहता भी है – हम–तुममें एक सख्य भाव है, हमारे संबधों में एक सहजता है। मैं तुम्हें पूर्ण रूप से स्वीकार करूँगा। तुम्हारे, मुझसे, तुम्हारी समस्याओं, तुम्हारे विगत सहित?[3] किंतु राधिका पश्चिम के जीवन तथा डैन के

अनुभव से परिचित होने के कारण मनीश जैसे एक स्वच्छन्द यायावार व्यक्ति को अपनाने से घबराती है। मनीश को वह 'प्ले बाय' से ज्यादा नहीं समझती। इसलिए वह मनीश के प्रस्ताव को टुकराती है। अक्षय को एक पति के रूप में वह चाहती है लेकिन उसके शंकाशील स्वभाव को पसंद नहीं करती है। इसलिए उसके विवाह–प्रस्ताव को टुकराकर अपने भाई के पास चली जाती है।

भाई के घर में राधिका को विमाता विधा की आत्महत्या की खबर मिलती है। विधा की मानसिक त्रास देने में राधिका के अंतर्मन को हमेशा प्रसन्नता होती थी। आज उसे पछतावा होता है और वह अनुभव करती है कि अपने पूर्वग्रहों के कारण उसने कभी भी विधा को ठीक तरह से जानने की कोशिश नहीं की। शायद डैन राधिका के मन का विश्लेषण करते हुए ठीक कहा था –''माँ के मरने के बाद तुम्हारे पिता भारतीय परिवेश में तुम्हें, प्रारंभ से ही युवा मित्र बनाने की सुविधा होती तो ऐसा नहीं होता। तब तुम्हें प्रसन्नता होती कि तुम्हारे पिता ने जीवन में फिर सुख पाया''।[4] विधा की आत्महत्या से पिताजी फिर से अकेले हो जाते है। वे राधिका से अपने साथ रहने के लिए कहते हैं। लेकिन राधिका शायद उन्हें और एकमानसिक आघात देने के लिए कहती है, ''.....नहीं पापा, मैं जाना चाहती हूँ.....''। मनीश...मेरे एक बन्धु....''[5] वह फिर अपने सारे दुखों की मुक्ति वैयक्तिक स्वतंत्रता में खोजना चाहती है।

3.4. रुकोगी नहीं राधिका : नायिका राधिका की भूमिका

3.4.1. जड़ परंम्परा का स्नेहपूर्ण तिरस्कार :

राधिका, 'रुकोगी नहीं राधिका' उपन्यास का मुख्य पात्र है। वह संपूर्ण रूप से उच्च

मध्यवर्गीय भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है।

राधिका एक ऐसी युवती है जो पत्नी या प्रेमिका नहीं सिर्फ मित्र बन सकती है। एक वर्ष तक डैन के साथ रहकर भी वह उनसे शादी करने की बात नहीं सोचती है। राधिका में पत्नीत्व की संभावनाओं को न पाकर, डैन उसे छोडकर चला जाता है। डैन के चले जाने के बाद राधिका अकेलापन महसूस करती है और समझ लेती है कि वह कितना भयावह है।

राधिका एक स्वतंत्र व्यक्तिवादी युवती है। जीवन के हर स्तर में वह स्वाधीनता चाहती है। पापा ने उसे वर्जनाओं के साहित्य में पाला था। लीक पकडकर न चलना उसे पापा ने ही सिखाया था। जब पापा उसके हम उम्र की विधा से शादी कर लेते है तो राधिका को पापा के घर में उसका अस्तित्व निरर्थक और आधारहीन लगता है। इसलिए वह अपने कैरियर बनाने के लिए डैन के साथ विदेश चली जाती है। वह डैन के साथ शादी की बात सोचती भी नहीं। जब रज्जू मामा डैन के साथ शादी की बात करते हैं तो राधिका साफ–साफ कह देती है कि शादी की कोई सवाल नहीं उठता। डैन ने मुझे विदेश जाने में सहायता जरूर दी थी, बस अपने कैरियर के लिए। राधिका भारतीय संस्कार एवं नैतिक मान्यताओं की कोई परवाह नहीं करती है। राधिका के चरित्र पर दृष्टिपात करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक शिक्षा से उसके पारिवारिक मान्यताओं में बहुत कुछ परिवर्तन आया है। आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से उसने शिष्ट जीवन की परंपरा पायी है, जिसे उसने अपने जीवन में उतार लिया है। उसका शील और विवेक परम्परागत–पारिवारिक मूल्यों के अनुरूप नहीं है। राधिका अपने अस्तित्व और

स्वतंत्रता की खोज में भटकती रहती है। यह खोज डैन और अक्षय से होती हुई मनीश पर आकर रखती है। राधिका में वैयक्तिक भावना ज्यादा दिखाई देती है। वह अपने जीवन पर किसी का किसी प्रकार का बंधन स्वीकार नहीं करती। वह अपने ढंग का स्वतन्त्र जीवन जीना चाहती है। वह कहती है, ''..... मैं स्वच्छन्दपूर्ण जीवन की इतनी आदी हो गयी हूँ कि विघ्न सह नहीं पाती''[6]। राधिका प्रेम किसी से करती है, विवाह किसी ओर से वह निजी जीवन में पूर्ण स्वतंन्त्रता की पक्षपाती है। अन्त में उसके पापा उसे दुबारा संरक्षण देने को तैयार हो जाते है, पर राधिका इनकार कर देती है।

राधिका को परंपरागत भावनाओं से चिढ़ है। इसलिए वह स्त्री–पुरुष संबंधों में स्वतंत्रता की पक्षाधर है। राधिका को इस बात की खीझ है कि यह वह देश नहीं है, जहाँ की अविवाहित व्यक्तियों की मैत्री बहुत सहजता से, नार्मल चीज़ की तरह स्वीकारी जाती है। लेकिन उसकी मान्यताएँ बहुत विचित्र लगती है क्योंकि इतनी ठोकरों के बाद भी वह कहती है – ''मेरे जीवन में 'प्ले–बाय' के लिए स्थान नहीं है। मैं संगी चाहती हूँ जिसमें स्थिरता हो, औदार्य हो, जो मुझे मेरे सारे अवगुणों सहित स्वीकार कर ले। मेरे अतीत को झेल ले''[7]। अक्षय के रूप में उसमें ऐसा एक व्यक्ति मिल भी जाता है। अक्षय में चारित्रिक गांभीर्य और शालीनता है लेकिन उसका शंकाशील स्वभाव, राधिका को उसे छोडने के लिए विवश कर देते हैं। अक्षय जब राधिका से विवाह प्रस्ताव रखता है तो राधिका कहती है कि, ''मैं नहीं चाहती कि जल्दबाजी में तुम अपने को कमिट करो अक्षय''[8]। अक्षय के मुकाबिल राधिका मनीश को चुन लेती है जो हमेशा लडकियों के संपर्क में रहता है और 'प्ले ब्बाय' से ज्यादा महत्व नहीं रखता। यद्यपि वह जानती है कि

अक्षय ही उसके लिए उचित वर है, फिर भी मनीश जैसे प्ले ब्बाय को जीवन साथी के रूप में चुनकर शायद वह अपने पापा को एक तरह से चोट पहुँचाना चाहती है। ''राधिका ने अपने को बार–बार याद दिलाया था कि मनीश जल्दी ही स्त्रियों से थक जाता है और डैन के बाद राधिका किसी पुरुष के श्रृंखला में एक खडी रह जाना चाहती थी, जैसा कि केवल अक्षय के साथ ही संभव था''[9]।

पुरुष के बिना रहने में भी राधिका को कोई दु:ख या भय नहीं है। वह आधुनिकता की उस सीमा को स्पर्श कर चुकी है, जहाँ वह मानसिक रूप से पुरुष की पूर्ण समता पर पहूँजी हुई है। पुरुष उसके निकट किसी भी प्रकार की वर्जना की अथवा भय की वस्तु नहीं रह गई है। दिल्ली में एक फलैट में अकेले रहते हुए भी उसे पुरुषहीनता का भय नहीं लगता है। पुरुष मित्रों से फूलों की भेंट स्वीकार करती है, उनके घर नैट पार्टियों में जाती है। राधिका एक तरह से आधुनिक जिन्दगी में रुढिमुक्त नारी के अपने ही आवर्त में धुसने रहने की दारुण स्थिति का बोध कराती है, न आधुनिक जीवन के रास्ते पर अपना निश्चित मार्ग ढूँढ पा रही है।

3.4.2. पाश्चात्य शिक्षा और खुली दृष्टि :

'रूकोगी नहीं राधिका' स्वातंत्रयोत्तर द्वितीय दशक का उपन्यास है। उषा प्रियंवदा ने इस उपन्यास के द्वारा आधुनिक उच्च मध्यवर्गीय युवती के स्वतंत्र अस्तित्व, मानसिक धुटन, संत्रास, अकेलापन, अजनबीपन आदि का सूक्ष्म चित्रण सफलतापूर्वक किया है। इस उपन्यास पर दृष्टिपात करने से ऐसा लगता है कि आधुनिक शिक्षा से परंपरागत पारिवारिक मान्यताओं में बहुत परिवर्तन आ गया है। आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से

राधिका ने शिष्ट जीवन को अपनाया है। उसके शील और विवेक परंपरागत, पारिवारिक मूल्यों के अनुरूप नहीं है। राधिका 'एक व्यक्ति निष्ट नारी' है। वह कभी भी अपने पापा और विमाता विद्या के साथ सामंजस्य नहीं कर पाती।

उषा प्रियंवदा ने आज के नारी जीवन की विसंगतियों तथा उलझतापूर्णमनः स्थितियों में नारी के मिसफिट होने की प्रवृत्ति और आधुनिकता तथा भारतीय संस्कारों के मध्य सूक्ष्म द्वन्द्व को उन्होंने सफलतापूर्वक चित्रित किया है। यद्यपि लेखिका अस्तित्ववादी जीवन दर्शन से पूर्ण प्रभावित है जिसके फलस्वरूप उनके पात्रों में अनास्था, भय और सांत्रारा बना रहता है, पात्रों में परिस्थितियों से उभरने का साहस भी नहीं है। फिर भी नारी की दुविधा और उसकी छटपटाहट का ऐसा सफल चित्रण अन्यत्र विरल है।

'रूकोगी नहीं राधिका' में उषाजी का उद्देश्य राधिका के द्वारा आज की भारतीय नारी के जीवन की विसंगतियों को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करना है। स्वयं एक नारी होने के नाते प्रियंवदाजी ने नारी जीवन की समस्याओं पर विचार किया है और उपन्यास में उन्हें आत्मसात किया है।

3.4.3. निजस्व की खोज :

प्राचीन काल में शिक्षा का अभाव, पारिवारिक उत्तरदायित्व और समाज के विरोध के कारण स्त्री का व्यक्तित्व एक सीमित दायरे में बंद था। अब बदलते युग में स्त्री में जागृति आयी हैं। वह पुरुष की भोग्या अथवा समर्पिता बनकर वह पुरुष से मुक्त होना चाहती है। आज नारी दृढ आत्मविश्वास और गहरे स्वाभिमान के साथ अपना व्यक्तित्व निर्माण

करने में लगी है। वह प्राचीन कर्मक मान्यताओं से मुक्त होकर पुरुष के समकक्ष प्रतिष्ठित होने में प्रयत्नशील है। वह पुरुष की सहकर्मी होना चाहती है, दासी नहीं। साथ ही अपनी ही गरिमा से युक्त ऐसा व्यक्तित्व भी अर्जित करना चाहती है, जो रूढ़िमुक्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण लिए हुए हैं।

'रूकोगी नहीं राधिका' में नारी सामर्थ्य व अधिकारों की तीव्र चेतना है। उसमें नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व का स्वर मुखरित होता है। विमाता विधा के परिवार में आने से राधिका की वही परिवार विस्मित–सा लगता है। परिवार में उसका दम घूटता है, उसे जो स्थान चाहिए वह स्थान परिवार में नहीं पाती इसलिए वह उन्मुक्त जीवन जीती है। राधिका विवाह के लिए स्पष्ट इनकार कर देना उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व का परिचय है। राधिका जो ठान लेती है, वहीं करती है। वह अपने जीवन पर किसी का किसी प्रकार का बंधन स्वीकार नहीं करती है। वह अपने ढंग का स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है। वह किसी में इच्छाओं के समक्ष नतमस्तक होने के स्थान पर वैयक्तिक स्वातंत्र्य और निजत्व को बनाये रखने के लिए पृथक होना अधिक अच्छा समझती है। वह अपने जीवन में प्रत्येक स्तर पर स्वाधीनता चाहती है। वह वैयक्तिक स्वतंत्रता राधिका ही नहीं, अक्षय तथा मनीश भी चाहते हैं और इसके लिए वे सब कुछ त्यागने के लिए भी तैयार है।

3.4.4. अस्तित्वबोध :

अस्तित्ववाद आधुनिक युग का सर्वाधिक प्रतिष्ठित दार्शनिक मतवाद है। जीवन के प्रति वैयक्तिक दृष्टि की प्रधानता अस्तित्ववाद के विचारों का केन्द्र हैं। मनुष्य का जीवन वैज्ञानिक चिन्तन, भौतिकता और जीवन की जटिलता से जकड जाता है। ''अस्तित्ववाद

की मान्यता है कि मानवता पर आये इस संकट के कारण अनिवार्य हो गया है कि मानव की पुन : उसके प्राकृतिक आंतरिक स्वरूप में अंतर्मुखी चेतना का आधार प्रदान किया जाए और उसके अस्तित्व की आन्तरिक गरिमा का सबल और बौद्धिक संबल दिया जाए जिससे वह संपूर्ण मानव बन सके''[10]। 'रूकोगी नहीं राधिका' उपन्यास में अस्तित्ववादी विचारधाराएँ मौजूद है। राधिका अपने अस्तित्व के लिए आद्यन्त प्रयत्नशील है। वह अपने अस्तित्व एवं स्वतंत्रता की खोज में भटकती रहती है। पिता के दूसरे विवाह के बाद वह अपने अस्तित्व को घर में निरर्थक समझती है। अपनी स्वतंत्रता और अस्तित्व के बीच वह पिता, भाई, सौतेलीमाँ विद्या किसी की भी बरदाश्त नहीं कर पाती हैं। जब पिताजी उससे उनके साथ चलने के लिए कहते हैं, तो राधिका अपने पिताजी से कहती है, ''जो आप चाहते है वहीं हमेशा क्यों हो? क्या मेरी इच्छा कुछ भी नहीं है? मैं आपकी बेटी हूँ, यह ठीक है पर अब मैं बडी हो चुकी हूँ और मैं जो चाहूँगी वहीं करूँगी''[11]। विदेश से लौटने पर राधिका आशा करती है कि पापा रूकने को कहेंगें। परन्तु पापा कहते हैं जैसा तुम ठीक समझे। अब तो तुम समझदार हो गई हो। राधिका घर से अलग रहकर भी अपने अस्तित्व को बचाये रखती है। इस प्रकार नारी के बदलते हुए पारिवारिक, सामाजिक, उत्तरदायित्व और अधिक कठिनाइयों के बीच जूझते हुए उसके अस्तित्व–बोध ा कहे, लेखिका ने राधिका नाम दिया है।[3]

3.4.5. अस्तित्व रूपों की टूटन और आक्रोश :

स्वतंत्रता परवर्ती व्यक्तिवादी उपन्यासों में मानवीय अस्तित्व रूपों की टूटन, क्षोभ, आक्रोश, पीडा और इन सबके साथ बोध के धरातल पर उत्पन्न निरर्थकता, विसंगति एवं

संत्रास को स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। स्वतंत्रता के पश्चात् के पिछले बीस–बाईस वर्षों में मध्यवर्गीय परिवारों की स्थिति में मूलभूत परिवर्तन हुआ है। और उसके अनुरूप एक नयी पीढी उभरकर सामने आयी है जिसने जीवन की नयी संभावनाओं को एक विशेष दृष्टिकोण से देखना प्रारंभ किया है। इस दृष्टिकोण ने दो तरह की भावनाओं को जन्म दिया है। एक ओर तो उन स्थापित रूढियों और मान्यताओं के प्रति विरोध का भाव है और दूसरी ओर जीवन के प्रति एक नये स्वच्छंद दृष्टिकोण का भाव है।

'रूकोगी नहीं राधिका' की नायिका राधिका में रूढियों और प्राचीन मान्यताओं के प्रति विरोध का भाव दिखाई पड़ता है। राधिका अपने पिताजी के दूसरे विवाह से क्रुद्ध होकर, अपना आक्रोश प्रकट करने के लिए एक विदेशी पुरुष के साथ विदेश चली जाती है और उसके साथ एक वर्ष तक बिना विवाह किए एक साथ रहती है। यह भारत परंपरागत मान्यताओं के प्रतिकूल होने पर भी राधिका को कोई दुख या हिचक नहीं है। डैनियल के साथ वह विदेश इसलिए नहीं जाती कि वह उससे प्रेम करती है बल्कि अपने पिता की मानसिक यन्त्रणा देने के लिए ऐसा करती है। विधा जब उससे विवाह की बात करती है, तब वह दृढ़ स्वर में उसका विरोध करती है। राधिका की बातें कभी बड़े लोगों को सीमोल्लंघन जैसे लगने पर भी वह अपने क्रोध और विद्रोह को छिपाना नहीं चाहती है। प्रियंवदाजी ने राधिका के आक्रोश और विद्रोह का चित्रण करते हुए आधुनिक भारतीय नारी के सामाजिक एवं पारिवारिक रूढियों के प्रति विद्रोह व्यक्त किया है।

3.5. रूकोगी नहीं राधिका - समस्याएँ

'रूकोगी नहीं राधिका' उपन्यास में तत्कालीन युगीन समस्याओं को सजीव रूप में

प्रतिपादित किया गया है। इसमें नारी मुक्ति, अस्तित्वबोध, पारिवारिक विघटन, अहं, कुंठा, संत्रास, अकेलापन, अजनबीपन, अंतर्मुखी वैयक्तिकता, निराशा और विवशता तथा नैतिक मूल्यों का ह्रास आदि आधुनिक जीवन की समस्याओं को रूपायित किया गया है। इसका कुछ उदाहरण निम्नलिखित है :

3.5.1. निराशा और विवशता :

साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास सामाजिक, आर्थिक विषमता से उपजे संत्रास, निराशा, विवशता और अभिशप्तता आदि युग के यथार्थों से प्रतिबिम्बित है। पात्र यातनापूर्ण विवशता में बंधे हुए है। संत्रास, धुटन तथा अनास्था उनके जीवन की यथार्थता है। आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों ने इन विवशताओं की गहराई में जाकर, उन्हें पहचानने और उससे अन्तर्निहित सत्य को उद्‌घाटित करने की चेष्टा की है, साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में जो रिक्तता बोध उभरकर आया है, वह आधुनिक मानव संबंधों की विवशता से उत्पन्न हुआ है।

प्रस्तुत उपन्यास में वैयक्तिक स्वतंत्रता के आग्रह से उत्पन्न पात्रों में असहनीय व्यथा एवं निराशा और अवसाद के क्षण दृष्टिगोचर होते हैं। राधिका सोचती है कि जब पापा ने अपने जीवन की राह चुन ली है तो, वह क्यों नहीं स्वतंत्र हो, अपने जीवन की राह खोज ले? इससे उसे असहनीय व्यथा, कुण्ठा एवं निराशा की प्राप्त होती है और वैयक्तिक स्वातंत्रय के नाम पर वह जीवनपर्यन्त छटपटाती रहती है। इस उपन्यास में निराशा, धुटन और पीडा को व्यक्त किया गया है। वैयक्तिक स्वतंत्रता के पीछे पडी राधिका की जिन्दगी बिखरी सी गयी है। प्रत्येक दिशा में खण्डित मूल्य नज़र आ रहा है, जिसके कारण राधिका का जीवन दुखमय बन जाता है।

3.5.2. अनमेल विवाह तथा विवाह विच्छेद :

भारतीय समाज में अनमेल विवाहों की कमी नहीं है। ऐसे विवाहों में कहीं अवस्था का अंतर होता है, कहीं विचारों का। अवस्था का अंतर अधिक होने पर भी जीवन सुखी हो सकता है। लेकिन विचारों में पार्थक्य होने की परिणति सदा ही दुखद होती है। सामाजिक एवं कानुनी रूप से पति–पत्नी के विवाह संबंधों का समाप्त हो जाना ही विवाह–विच्छेद कहलाता है। पति–पत्नी के वैवाहिक एवं पारिवारिक जीवन में असामाजंस्य एवं असफलता का सूचक है विवाह विच्छेद।

'रूकोगी नहीं राधिका' में राधिका के पिता और विद्या का विवाह अनमेल विवाह है। विद्या राधिका के पिता से लगभग बीस–इक्कीस बरस छोटी है। शायद दोनों के बीच अवस्था का अंतर ही नहीं, विचारों आ अंतर है। डैन की पत्नी एक हंगीरियन के प्रति आकर्षित होती है। एक बच्चा होने हुए भी वह बहुत ही सहज भाव से डैन से तलाक लेती है और उसे छोडकर चली जाती है। विदेश में पग–पग पर साधरण से साधारण बात को लेकर जिस प्रकार तलाक हो रहे है, इसका संकेत प्रस्तुत उपन्यास में मिलता है। राधिका कई बार सोचती है कि कैसा होगा वह देश जहाँ लोग इतनी आसानी से साथी बदल लेते है?

उषाजी ने प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा यह बात व्यक्त किया है कि भारतीय समाज में अनमेल विवाह बहुत होती है, लेकिन विवाह–विच्छेद बहुत कम ही होते।

3.5.3. नौकरी पेशा नारी की समस्याएँ :

आज की नारी आर्थिक रूप से तो स्वतंत्र हो गई, परन्तु भावात्मक स्तर पर उसकी स्थिति पहले से भी कमजोर होती जा रही है। वह अपने आपको ज़रा भी सुरक्षित महसूस नहीं करती। ऐसी उसकी अनेक समस्याएँ है जो निजी मानसिकता से उत्पन्न हुई है। इनसे बिना सामना किए उसकी रूढिमुक्ति संभव नहीं है। अर्थार्जन करनेवाली स्त्रियों में अहं की भावना प्रबल होती हे। वे अपेक्षाकृत अधिक संवादनशील हो जाती है। अपना तिरस्कार अपनी उपेक्षा वह ज़रा भी स्वीकार नहीं कर पाती। उनकी व्यक्तित्व थोडा कठोर होता है। यथार्थ के धरातल पर उन्हें इतनी सारी छोटी–छोटी बातों का सामना करना पडता है कि उनमें व्यावहारिकता आती चली जाती है। उनकी सारी कोमलता दब जाती है।

'रूकोगी नहीं राधिका' की नायिका भी एक नौकरी पेशा नारी है। उसमें अहं का भाव प्रबल है। वह अपना तिरस्कार ज़रा भी सह नहीं सकती। इसलिए एयरपोर्ट पर कोई संगे–संबंधी न आने पर वह क्रुद्ध हो जाती है। राधिका कुछ कठोर व्यक्तित्ववाली युवती लगती है। जीवन की कोई भी प्रसन्नता उसे भावानुकूल या परिवार की दुर्घटना उसे विह्वल नहीं बना सकती। इसी कठोरता के कारण वह विद्या के मरने के बाद कोई दुःख प्रकट नहीं करती है और पापा के साथ एक दिन भी नहीं ठहरती है। उषाजी ने राधिका के माध्यम से संपूर्ण नौकरी पेशा नारियों की समस्याओं का प्रतिपादन किया है।

3.5.4. रूढिमुक्ति की अधूरी यात्रा :

प्रस्तुत उपन्यास की नायिका राधिका की दुविधा ऐसी भारतीय नारी की दुविधा है

जो अपनी दिशा तय नहीं कर पा रही है। वह अपने व्यक्तित्व स्वातन्त्र्य के लिए लडती है। राधिका ने बचपन से माँ के चल बसने के बाद से, अकेलेपन को जाना है कि वह कितना भयावह होता है। इसीलिए वह अपने पिता से इतना जुड गयी है कि उन्हें ही अपनी जीवन की धुरी मानने लगी है। इसीलिए जब पिता विद्या से विवाह कर लेते है तो वह अपने को निराधार, निर्वासित–सा समझने लगती है। यही कारण है कि वह एक विदेशी पत्रकार डैन के साथ भारत छोडकर अमेरिका चली जाती है। वहाँ एक साल उसकी संरक्षण में रहती है; परन्तु बाद में किन्हीं कारणों से जब उनके सम्बन्धों में तनाव आ जाता है तो वह अलग ही अपनी कलात्मक सम्भावनाओं को विकसित करने का प्रयत्न करती है। भारतीयता उसकी नस नस में भरी हुई है। डॉ. नगेन्द्र मोहन द्वारा सम्पादित आधुनिक हिन्दी उपन्यास में वे लिखते है कि ''राधिका दो संस्कृतियों के पाटो में फिरकर अनिर्णय और अकेलेपन को झेलती है। वह दोनों संस्कृतियाँ–विदेशी और देशी में मिसफिट होकर रह जाती है''[12]। रज्जू मामा के डैन से शादी करने के सुझाव पर वह कहती है कि, ''कोई सवाल ही नहीं उठता था। उन्होंने मुझे विदेश जाने में मदद की थी''[13]। राधिका जिन्दगी को काफी व्यावहारिक रूप में लेती है। इसलिए अमेरिका पहुँचकर जब उसकी डैन के साथ नहीं बनती तो वह अकेली रहती है। जो ठान लेते है, वही करती है, वह अपने ऊपर समाज, परिवार किसी का दबाव महसूस नहीं करती।

3.5.5. हीन भावना से पीडित नारी :

राधिका हीन भावना से भी पीडित है। उसे इस उम्र में अपने पिता का विद्या से विवाह करना अच्छा नहीं लगता। वह भी उन्हें मानसिक आघात पहूँचाना चाहती है, यही

कारण है कि विदेश चली जाती है। वह दूर किसी में अपने पिता का प्रतिबिंब ढूँढती है। वह कहती है कि "मुझे युवा पुरुष सभी अपरिपक्व लगते है"[14]। डॉ. स्वर्णलता के अनुसार "शिक्षा से उसने शिष्ट जीवन की परम्परागत पारिवारिक मूल्यों के अनुरूप नहीं है। वरन वह व्यक्तिनिष्ठ है। प्रतिभाशील, मननशील राधिका में भारतीय संस्कृति के प्रति मोह है। उसके जीवन की मान्यताओं को ठेस लगी है, इसलिए वह अतीत को भूलना चाहती है। वह पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित है पर यह प्रभाव वहाँ भी उसके व्यक्तित्व पर थोपा हुआ–सा प्रतीत नहीं होता। वह, बस वहीं तक ही जहाँ तक उसका व्यक्तित्व उसे गृहण कर सकता है। इसलिए उसके विचारों में गाम्भीर्य है"[15]।

जब विद्या राधिका से विवाह की बात कहती है तो वह दृढ स्वर में कहती है कि मैं अभी विवाह करना नहीं चाहती। वह मनीश और दो नवयुवकों के सम्पर्क में आती है। मनीश के प्रति सहज लगाव है, मनीश एक बार राधिका से कहता भी है, "... यानि कि तुम पुरुष या प्रेमी या पति नहीं ढूँढती, पिता ढूँढती हो। जीवन के एक संघर्षमय क्षण में डैन ने तुम्हें संभाला, तुम कृतज्ञता में उसके साथ रहने लगीं, अब अक्षय देख–भाल कर रहा है तो शायद उनसे विवाह कर लो। क्योंकि तुम जीवन में लगर चाहती हो, उसे पूरी तरह स्वीकार करने की प्रस्तुत नहीं हो"[16]।

इस उपन्यास में एक तरफ पिता पुत्री में अनुराग का तनाव है और दूसरी तरफ मनीश अक्षय के बीच डोलने की स्थिति का तनाव है जो अनिश्चितता और सारहीनता के बोध की गहराती है। वह अपने परिवेश से कटा हुआ पाती है। आखिर वह मनीश के बारे में तय कर लेती है। लेकिन असली तनाव पिता–पुत्री के सम्बन्ध में हैं। "...जब पिता

कहते है कि मैं ने अपने बारे में कुछ सोचा नहीं हैं, चाहता हूँ कि तुम यहाँ रहो राधिका, पहले की तरह। कुछ देर के बाद अंधेरे में उसका जवाब मिलता है – नहीं पापा ..... मैं जाना चाहती हूँ। मनीश मेरे एक बंधु'[17]। यद्यपि अक्षय उसके लिए उचित वर है। वह जानती है, फिर भी मनीश को वह जीवन–साथी के रूप में चुनकर अपने पिता से प्रतिशोध करना चाहती है।

प्रस्तुत उपन्यास में राधिका के हीन भावना का मार्मिक चित्रण किया गया है। मानव व्यवहार में हीन ग्रंथी के कारण एक प्रकार की असमानता और विकृति उसके मन में उत्पन्न हो जाती है।

3.5.6. संतुलित जीवन दर्शन की ओर :

'रूकोगी नहीं राधिका' उपन्यास में राधिका के अंतर्गत जीवन की सभी विषय परिस्थितियों, उसके विदेश प्रवास के कारण 'कल्चरल' और 'रिवर्स कल्चरल शाक' से पीड़ित मनोवृत्ति, अपने पिता के प्रति अतीव आकर्षण जिसके कारण वह अपने जीवन में किसी भी पुरुष को स्वीकार नहीं कर पाती इत्यादि विकृत मनोवृत्तियों का चित्रण उषाजी ने चित्रित किया है। राधिका विदेश जाती है शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से, यहाँ का बिल्कुल विपरीत वातावरण उसे कल्चरल शाक की स्थिति मेले पटकता है। तीन वर्ष बाद वापस भारत लौटने पर उसे अपने देश रंगहीन व फीका–सा लगता है। यहाँ पर राधिका पर लगे 'रिवर्स कल्चरल शाक' का संकेत है। अपनी संस्कृति, अपनी सभ्यता से बिल्कुल विलोम मान्यताएँ, अलग वातावरण, मनुष्य को सदमे की स्थिति में ला देता है, यही कल्चरल शाक है।

राधिका की दोहरी मानसिकता उसके मानसिक द्वंद, उसकी ऊब और घुटन की भी उषाजी ने स्पष्ट किया है और इनके द्वारा उन्होंने नारी की मानसिकता पर विभिन्न परिस्थितियों में विपरीत प्रभाव पड़ता है, ऐसा कहा है। उपन्यास के प्रारंभ में ही राधिका की आंतरिक स्थिति के द्वंद का पता चल जाता है। इस संदर्भ द्वारा स्पष्ट होता है – "अपने अन्दर कुछ और डूबने पर राधिका हृदय में खेद के नन्हे से आभास को पकड जाती है कि उसकी आँखों को सब बड़ा रंगहीन, मटमैला और अंधेरा सा लग रहा है"[18]।

'रूकोगी नहीं राधिका' उपन्यास के कथ्य के विश्लेषण से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि व्यक्ति को अकेला, अजनबी और व्यर्थताबोध का शिकार बनाने का श्रेय या तो मौजूद परिवेश को है अथवा आधुनिकता से प्रभावित मानव इन अनुभूतियों से गुजरने को बाह्य है। अकेलापन, अजनबीपन आदि को आधुनिक मनुष्य की अनिवार्य नियति मानी जाती है। क्योंकि चेतना की वृद्धि अपने वर्तमान अस्तित्व के बारे में उसकी निरंतर सजगता उसे समुदाय से असंपृक्त कर देती है। इस उपन्यास में अकेलापन, अजनबीपन और व्यर्थता–बोध की भयावहता का उल्लेख मिलता है। इसमें जो जीवन चित्रित हुआ है वह आम आदमी का नहीं है। इस उपन्यास का कथ्य विशिष्ट जनों के विशिष्ट संदर्भों से किया गया है। उपन्यास के मूल में विदेशी चिन्तन विशेषतः अस्तित्ववाद विद्यमान है। प्रस्तुत उपन्यास में भारतीय और अभारतीय, दोनों परिवेशों में अकेलापन, अजनबीपन आदि को चित्रित किया गया है। पाश्चात्य चिन्तन को पचाकर भारतीय चिन्तन के अनुकूल डालने का प्रयास उपन्यास में है। इस प्रयास में उषा प्रियंवदाजी को सफलता मिली है।

3.6. निष्कर्ष :

इधर नारी आत्म–निर्भर बनाने की दृष्टि से अर्थार्जन करने लगी है और उसने यह भी समझा है कि जीवन का सुख और स्वातन्त्र्य अधिकाधिक अर्थार्जन करने या कैरियर बनाने में है। परिणामतः यह नारी अपने स्त्रीत्व का उपयोग करना कैरियर बनाने में करती है। अब उसके मन में दैहिक पवित्रता सामान्यत : नहीं रहे है।

परंपरा की सीमाओं से बाहर जाने की जो चेष्टाएँ राधिका ने की है, वे सब उन सबका परिणाम कभी सराहनीय नहीं कहा जा सकता। वैयक्तिक स्वतंत्रता के नाम पर जो भी हुआ, महसूस होता है कि वह भी एक प्रकार की मिथ्या धारणा ही है। निष्कर्ष यह हो सकता है कि स्वतंत्रता तथा वैयक्तिक अकेलापन ज्यादातर मनोवैज्ञानिक मात्र है।

संदर्भ ग्रंथ

1. शान्ती जोशी, शून्य ही बाहों में, पृ. 55.
2. ––वही–– पृ. 55
3. ––वही–– पृ. 111
4. डॉ. उषा प्रियंवदा, रुकोगी नहीं राधिका, पृ. 26
5. ––वही–– पृ. 116
6. ––वही–– पृ. 53
7. ––वही–– पृ. 69
8. ––वही–– पृ. 100
9. ––वही–– पृ. 48
10. डॉ. श्याम सुन्दर मिश्र, अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोक्तर, पृ. 15
11. डॉ. उषा प्रियंवदा, रुकोगी नहीं राधिका, पृ. 43
12. डॉ. नगेन्द्र मोहन, आधुनिक हिंदी उपन्यास, पृ. 47
13. डॉ. उषा प्रियंवदा, रुकोगी नहीं राधिका, पृ. 36
14. डॉ. उषा प्रियंवदा, रुकोगी नहीं राधिका, पृ. 36
15. डॉ. स्वर्णलता, स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य की समाज शास्त्रीय पृष्ठभूमि, पृ. 58.
16. डॉ. उषा प्रियंवदा, रुकोगी नहीं राधिका, पृ. 90
17. डॉ. उषा प्रियंवदा, रुकोगी नहीं राधिका, पृ. 87
18. डॉ. उषा प्रियंवदा, रुकोगी नहीं राधिका, पृ. 5

चतुर्थ अध्याय

शेष यात्रा : स्त्री स्वत्व का रूपायन

शेष यात्रा : स्त्री स्वत्व का रूपायन

4.1. इतिहास के आइने में स्त्री

नारी तप, त्याग, सेवा–साधना की जीवन्त प्रतिमा है। कोमलता, सौन्दर्य और त्याग इस त्रिवेणी संगम से नारी ने तो धरती पर स्वर्ग की अवधारणा की है। नारी जीवन का अविभाज्य अंग है। साहित्य में वर्णित नारी को समाजगत नारी की यथार्थावस्था से बहुत दूरस्थ नहीं माना जा सकता। नारी रमणी–मात्र नहीं है, जीवन–क्षेत्र में उसके अनेक गार्हस्थ्य एवं प्रेरक रूप भी होते है। वास्तव में नारी श्री है, शक्ति है, चिति है। समाज में नारी की पूजा होनी चाहिए। वह देवता स्वरूप है।

प्राचीन भारत में नारी का आदर्श जीवन था और उसका कार्यक्षेत्र सीमित होते हुए भी असीम था वह श्रद्धा की वस्तु थी और हमारे समाज एवं संस्कृति का मापदण्ड, नारी को चाहे हम भारतीय कहें, घरवाली कहें, सर्वमंगले, देवी या श्रद्धा की वस्तु कहें, क्योंकि गुलाब को जिस नाम से भी पुकारें उसकी सुगन्ध वही रहेगी।

नारी दूसरों के दुःख से पीडित है परन्तु उसका उपचार भी वह ढूँढती है। वह अपनी कठिनाइयों को तुच्छ समझती है। वह अपने सुख का बलिदान जगत के हित के लिए करती है।

राष्ट्रनिर्माण में भी नारी का बड़ा महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। त्याग, तपस्या, साधना तथा अहिंसा की प्रतिमूर्ति भारतीय नारी एक ऐसी नूतन जागरण का नवल वेला लायी जा सकती है। नारी परिवार की जान है और परिवारों के समूह का ही दूसरा नाम समाज है।

आधुनिक काल में भारतीय नारियों ने जितनी प्रगति की है, अपने सामाजिक एवं राजनीतिक अधिकारों के लिए उन्होंने महान संघर्ष किया, वह मानवीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है।

उषा प्रियंवदा की तीसरा उपन्यास है 'शेष यात्रा'। इन्होंने इस उपन्यास को विदेशी पृष्ठभूमि बनाकर लिखा है। इन्होंने भारतीय परिवेश एवं विदेशी परिवेश दोनों में बडी निपुणता से उभारा है। न वे भारतीय संस्कृति को छोड सकती है और न वे पाश्चात्य संस्कृति में अपने ऊपर हावी होने देना चाहती है। उषाजी ने प्रस्तुत उपन्यास में दाम्पत्य सुख की समस्या, नारी सम्मान की समस्या और निरुद्देश्य आनन्द की प्राप्ति आदि समस्याओं को दर्शाया है।

उषाजी ने अपने युग की सामाजिक समस्याओं को अपना विषय चुना है। इन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा नारी में जागृति लानी चाही है और साथ ही साथ उन आधुनिकाओं के लिए भी संदेश दिया है जो यहाँ से विदेश जाकर अपनी संस्कृति व सभ्यता की आहुति दे देती है। इन्होंने अपनी कला के माध्यम से नारी को जागरूक बनाना चाहा है। लेखिका के तीनों उपन्यासों में समस्याएँ अलग–अलग है, पर तीनों की कथावस्तु नारी से शुरू होकर नारी पर ही खत्म होती है। नारी ही आद्यात् आकर्षण बिन्दु है।

4.2. शेष यात्रा : कथा वस्तु

प्रस्तुत उपन्यास की नायिका अनुका है। अनुका के माता–पिता बचपन में ही मर गए थे। यह अपने मामा–मामी के पास रहती है। मामा और मामी उसे बड़े प्यार से रखते हैं। उपन्यास फलैश–बैक शैली से लिखा गया है।

अनुका एक दिन कॉलेज से लौटकर नाश्ता करने बैठती है कि अचानक उसकी नज़र एक सुदर्शन युवक पर पडती है जो उसके सारे क्रिया–कलापों को बड़ी तन्मयता से देख रहा है। अनुका उसे अपनी तरफ देखता पाकर मामी के कमरे में भाग जाती है और वह उस युवक के बारे में पूछती है। मामी कहती है कि वह बड़ी लल्ली का लडका है और डोली बीबी को देखने आया है। लेकिन वह युवक अनुका को देखते ही उसे पसंद कर लेता है और अनुका के साथ विवाह कर वह उसे विदेश ले जाता है।

भोली–भाली अनु एक मध्यवर्गीय परिवार से है। इसलिए प्रणव का ढेर सारा धन देखकर कुछ दिन तक आश्चर्यचकित रहती है। धीरे–धीरे वह अपने आप को प्रणव के अनुसार ढाल लेती है। वह हर काम प्रणव से पूछ पूछकर करती है। वह अपने आप को प्रणव पर न्योछावर कर देती है। उसकी हँसी में हँसती है, उसके दुख में दुःखी होती है। धीरे–धीरे दोनों को यही प्यार से रहते हुए पाँच साल गुज़र जाते हैं। इस अवधि के दौरान प्रणव अनुका को इतना प्यार देता है कि वह अपने आपको संसार की सबसे भाग्यशाली स्त्री समझने लगती है।

अकस्मात् अनुका का भाग्य करवट लेता है और प्रणव अनुका को छोड़ देने के लिए निश्चय करता है। अनुका को प्रणव की इस बात पर विश्वास नहीं होता कि प्रणव उसे छोड़ भी सकता है और एक दिन अनुका के लाख चीखने चिल्लाने के बावजूद भी प्रणव उससे सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है। तलाक के कई वर्ष बाद तक अनुका प्रणव के साथ बिताए दिनों की स्मृति के सहारे जीती है। उसका अस्तित्व प्रणव के बिना कुछ नहीं है। वह प्रणव से अलग होकर जीने की कल्पना मात्र से काँप उठती है। उसकी सखी दिव्या

जो पी.एच.डी. करते हुए भी एक रेस्तराँ में वेट्रेस भी है। वही अनुका को नये सिरे से जीने की प्रेरणा देती है। वह उसे संघर्ष करने का मार्ग बतलाती है। अनुका प्रयत्न करके डाक्टरी की पढ़ाई पूरी करती है और अपने आप को पूर्ण रूप से विदेशी परिवेश में ढाल लेती है। वह नौकरी करके आत्मनिर्भर बनती है। और साथ ही दीपांकर नामक युवक, जो कि उसकी सहेली दिव्या को भाई है और वह उसे भारत से ही मन ही मन प्रेम करता था, उससे विवाह कर लेती है। उसकी दूसरे पति दीपांकर से एक पुत्री है।

तलाक के आठ वर्ष पश्चात् प्रणव अनुका से बडी ही दयनीय अवस्था में अस्पताल में मिलता है। जिस लड़की चंद्रिका के लिए उसने अनुका को छोड़ा था। वही चंद्रिका थोडे समय पश्चात् उसे छोड़ जाती है। प्रणव का दो बार हार्ट का आपरेशन होता है जिससे वह काफी कमज़ोर हो जाता है। अनुका प्रणव को इस हालत में देखकर दुखी हो जाती है और एक पल को भूल जाती है कि यही प्रणव ने उसे कितनी बेदर्दी ासे विवाह के पाँच सालों के बाद ही अपने जीवन से निकाल फैंका था। लेकिन अगले ही पल वह अस्पताल से चली जाती है। लेकिन अनुका वापस अस्पताल में प्रणव से मिलने नहीं आती क्योंकि उसे ये आशंका है कि वह प्रणव के सामने कमजोर पड़ जाएगी। इधर प्रणव भी अनु को बिना बताए अस्पताल से चला जाता है। इस तरह दोनों अपनी शेष यात्रा अलग–अलग तरह से पूरी करने को निकल पड़ते है।

4.3. अनुका की भूमिका :

शेष यात्रा शीर्षक ही प्रतीकात्मक है। इस शीर्षक के द्वारा लेखिका नायिका अनुका के जीवन में विशेषकर तलाक के बाद आए परिवर्तन की ओर संकेत करती है क्योंकि

तलाक के बाद ही वह नयी जिंदगी शुरु करती है। अर्थात् उसका अलग व्यक्तित्व उभर उठता है।

प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा यह व्यक्त करना ही लेखिका का उद्देश्य है कि पुरुष के बिना नारी का अर्थपूर्ण जीवन असंभव नहीं है। प्रणव के द्वारा अनु के चरित्र को उज्जवल बनाया गया है।

उपन्यास की नायिका अनुका एक मध्यवर्गीय परिवार की लड़की है। अपने घर की परिस्थितियों के कारण ही उसका व्यक्तित्व अन्तर्मुखी हो जाता है। अपने अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के कारण दूसरों का सामना करने में वह हिचकती है। "अनु को लगा कि सब उसे ही देख रहे थे और वह शर्म से पानी–पानी हुई जा रही थी"[1]।

अनु का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है। उसका व्यक्तित्व दूसरों के द्वारा निर्धारित है। खाना, कपड़ा, पढाई आदि छोटी–छोटी बातों से लेकर उसके शादी तक की बात कोई उसे कुछ नहीं बताता है। न ही उसकी पसंद नापसंद के बारें में पूछते हैं। सारे तूफान, हलचल के बीच अनु चुप है। उससे कुछ पूछा नहीं जाता, उसे कोई कुछ नहीं बताता, पर घर में जो उल्लास है, उसे वह देखती है"[2]।

विवाह के बाद अनु अपना सारा अस्तित्व प्रणव नाम की खूँटी पर टाँग देती है। वह अपनी सारी इच्छाओं को प्रणव की इच्छाओं के अनुसार ढाल देती है। पत्नी के रूप में अपने उत्तरदायित्व को निभाना अपना परम कर्तव्य समझती है। "अनु प्रणव के मूड से चलती है वैसे ही हँसती है वैसे ही चुप हो जाती है। ..... खाना बनाना, घर साफ–सुथरा

रखना, प्रणव की पोज़ीशन के अनुसार कपडे पहनना, पार्टियों में चुपचाप मुस्कुराते रहना''[3]।

अनु भारतीय पतिव्रता नारी है। वह पति को अपना सर्वस्व मानती है और वह प्रणव के पैरों पर समर्पित है। नया देश और वातावरण में भी वह आदर्श पत्नी बनती है। अपने प्रति आकर्षित डाक्टर वाटरमैन से वह कहती है, ''मैं अपने पति के साथ बहुत सुखी हूँ, किसी दूसरे पुरुष का ध्यान भी मैं पाप समझती हूँ''[4]। आदर्श भारतीय पत्नी होने के कारण अनु प्रणव के साथ संबंध बनाये रखने की पूरी कोशिश करती है। अपने आत्मसम्मान को भी नष्ट करके प्रणव से याचना करनेवाली अनु में हम एक निरालंब पतिपरायणा नारी को देखते है। ''मैं कुछ नहीं मानूँगी। सच, मैं बिल्कुल दिक्कत दिए बिना रह लूँगी। मोटर, बंगला, मुझे कुछ नहीं चाहिए। जो आप देंगे वह सिरमाथे पर। बस, आप मुझे अपने साथ रख ले। मुझे अलग न करे। कितने लोग यों भी निभाते आए हैं, मैं पैरों पड़ती हूँ''[5]।

अपने अंदर की भारतीयता एवं नैतिकता के कारण अनु तलाक के बाद भी प्रणव को उसके पास लौट आने की प्रतीक्षा करती है। ''अनु तो बस एक उपाय चाहती है। .... सब कुछ ठीक हो जाए। प्रणव आकर उसे कलेजे से लगा ले और कहे – 'मेरी स्वीट हार्ट''। एक मात्र शब्द प्रार्थना उसके दिल से निकलती है और शून्य में खो जाती है''[6]। पति की इच्छा के विरुद्ध सोचने या करने में अनु असमर्थ है। इस विवशता के कारण माँ बनने की अदम्य इच्छा को भी वह मन में ही दबा देती है। अनु हमेशा प्रणव की बात सुनती है, ''पहले एंजाय करना चाहिए, बाद में बच्चे''[7]।

अनु स्वभाव से सीधी–सादी है। अपना देश छोड़कर विदेश में रहकर भी उसके स्वभाव में कोई दोहरापन नहीं है। "जो बाहर था, वही अन्दर। सब कुछ साफ–सुथरा। तरीके से सजा हुआ"[8]। कई साल विदेश में रहकर भी अनु विदेश सभ्यता के साथ समझौता नहीं कर पाती। इसलिए विदेशी सभ्यता में अन्धे होकर बहनेवाली सहेलियों एवं परिचितों के साथ सच्ची दोस्ती नहीं स्थापित करती।

तलाक के बाद पढ़ लिखकर सुशिक्षित अनु आत्मविश्वासी एवं आत्मनिर्भर बन जाती है। भोली–भाली मामूली लड़की के बदले मर्दों में बराबरी करनेवाली आधुनिक कर्मठ नारी बनती है। जिस प्रणव ने उसे ठुकरा दिया था, उस प्रणव के बिल्कुल बराबर उसके समान डाक्टर बन जाती है।

समय के प्रवाह एवं उम्र के बढने के साथ अनु के चरित्र में परिपक्वता आ जाती है। अपने साथ बहुत अन्याय होने पर भी वह प्रणव के प्रति गुस्सा या द्वेष नहीं रखती। वह प्रणव से कहती है, "हर रिश्ते की एक अलग रंगात, अलग बुनावट होती है। हर कोई अपनी–अपनी सामर्थ्य के हिसाब से ही दे सकता है। अगर आपकी सामर्थ्य सिर्फ एक छटाँक प्यार देने की थी तो आपसे एक किलो प्यार की आकाँक्षा करना मेरी बेवकूफी थी"[9]।

अनु एक ऐसी नारी है जो दूसरों की भावनाओं को समझती है। इसलिए वह दीपांकर के साथ शादी करने के लिए तैयार हो जाती है, जो पहले से उसे प्यार करना था। दीपांकर की भावनाओं के साथ वह खिलवाड़ नहीं करना चाहती। अनु ने उस

समय मन–ही–मन अपने से वादा किया कि वह कभी दीपांकर को किसी तरह का दुःख या पीड़ा नहीं देगी, जैसी वह झेल चुकी है, वैसे तो बिल्कुल नहीं।

भारतीय नारी चाहे कितनी भी शिक्षित एवं आधुनिक क्यों न हो अपनी जिंदगी में पहली बार आए पुरुष के प्रति मन में लगाव रहता है। पुनर्मिलन पर अपने सामने रोगग्रस्त, जर्जर और टूटे हुए प्रणव को पाकर अनु का मन उससे लिपट जाना चाहता है। वह असमंजस्य में पड़ जाती है कि क्या करें। लेकिन एक बच्ची की माँ, दुनियादारी को कुशल, आधुनिक नारी होने के नाते अनु अपनी दोहरी मानसिकता से मुक्त हो जाती है। मन में गहरी पीड़ा होते हुए भी प्रणव को अपनी जिन्दगी से निकाल देती है।

4.4. अस्मिता का विकासमान रूप

4.4.1. प्रेम :

प्रेम का सम्बन्ध स्त्री–पुरुष दोनों से है किंतु वह नारी जीवन को अधिक प्रभावित करती है। उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में प्रेम सम्बन्धी समस्याओं का स्वर प्रधान है। उनके नारी पात्रों का सृजन प्रेम की पृष्ठभूमि पर ही हुआ है। वे सत्य और सौंदर्य के उपासक है और उनकी मान्यता है कि पुरुष और स्त्री का परस्पर आकर्षण ही प्रेम को जन्म देता है। यह आकर्षण आत्मिक भी हो सकता है और दैहिक भी। इसलिए उनके उपन्यासों में प्रेम के भिन्न–भिन्न रूपों का चित्रण हुआ है। प्रेम के स्वस्थ और अस्वस्थ दोनों रूपों का चित्रण उनकी रचनाओं में प्राप्त होता है।

प्रेम एक स्वर्गीय इन्द्रजाल है। वह हृदयों को मिलाता है। प्रेम हृदय के समस्त सद्भावों का शांत, स्थिर, उद्गारहीन समावेश है। प्रेम और वासना में कंचन और काँच का सा अंतर होता है। प्रेम आत्मा से होता है, शरीर से नहीं।

शेष यात्रा में अनु और दीपांकर का प्रेम इसका उदाहरण है। दीपांकर अनु को पहले से ही सच्चे दिल से प्यार करता है। अनु की शादी से पहले वह अपने दिल की बात कहने में असमर्थ होता है। अनु एवं प्रणव में तलाक हो जाने के बाद ही वह अपने प्रेम के बारे में अनु से कहता है। अपने अंदर के स्वार्थपूर्ण प्रेम के कारण अनु और प्रणव के तलाक होते ही दीपांकर मन ही मन संतोष का अनुभव करता है। और पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होने के कारण अनु और दीपांकर शादी के पूर्व अनैतिक संबंध रखते हैं। यह निश्चय ही भारतीय सभ्यता के विरुद्ध है। लेकिन पाश्चात्य सभ्यता के अनुकूल है।

समाज के प्रति विवाह को वह स्थान प्राप्त नहीं है जो परंपरागत विवाह को प्राप्त है और लोगों की मान्यता यह है कि प्रेम विवाह अधिकांश असफल ही होते है। लेकिन इस मूल्य में भी परिवर्तन दिखाई देता है।

उपन्यास में अनु एवं दीपांकर का विवाह प्रेम विवाह है। लेकिन इस प्रेम विवाह में असफलता दिखाई नहीं देती है। क्योंकि दोनों के विचार एक समान ही है। एक ओर दीपांकर अनु जैसी भारतीय नारी को चाहता है तो दूसरी ओर अनु भी दीपांकर जैसे एकनिष्ठ प्रेमी एवं पति चाहती है।

4.4.2. वैवाहिक जीवन :

आधुनिक जीवन में वैवाहिक जीवन की कुछ विशेष आवश्यकता है। नारी द्वारा पुरुष को हर स्थर पर तृप्ति प्रधान करना आवश्यकता है, मानसिक तृप्ति व प्रेरणा भी एक आवश्यक शर्त बन गयी है। अतः वैवाहिक जीवन में मध्यवर्गीय नारी को और भी कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है। सामंजस्य के अभाव में तलाक ही आखिरी रास्ता रह रहा है। ये बात उषा जी ने प्रस्तुत उपन्यास में नायक प्रणव द्वारा अनु को तलाक देने के संबंध में प्रकट की है। मध्यवर्गीय नारी का वैवाहिक जीवन अब संस्कारों के बन्धनों में छटपटाता नहीं है। मगर अलगाव की आवश्यकता है तो मध्यवर्गीय नारी संकोच करके टूटकर अपने आप को मिटाती नहीं है। वह अपने वैवाहिक जीवन की विसंगतियों से उभरकर अपने व्यक्तित्व की नये सिरे से स्थापित करती है। अपनी आवश्यकताओं के कारण दूसरा विवाह करना भी गलत नहीं समझती। यही सब बाते इस उपन्यास का सार है।

4.4.3. जिजीविषा :

उषाजी के नारी पात्र की जिजीविषा 'अनु' के चरित्र से झलकती है। प्रणव के तलाक देने के पश्चात भी अनु में कहीं न कहीं जिजीविषा पनपने के कारण ही वह फिर से संघर्ष करती है। संघर्ष द्वारा वह अपने आपको नये व्यक्तित्व में डालने में सफल होती है। आधुनिक मध्यवर्गीय नारी भी यही चाहती है कि वह संघर्ष द्वारा अपनी विशिष्ट पहचान बनाए। वह नहीं चाहती कि समर्पण से वह सदा ही खंड–खंड होती रहे। अत : नायिका अनुका अपनी अस्तित्व की रक्षा के लिए वह भी पेशा अपनाती है जो प्रणव का

है और इससे स्पष्ट होता है कि अनुका ये बतला देना चाहती है कि वह भी प्रणव कुमार के समान मान, मर्यादा, पद की गरिमा प्राप्त कर सकती है।

अनु क्षतिपूर्ति करके तनावमुक्त होती है, वह अपने अस्तित्व को बनाये रखती है, एक अलग पहचान कायम करती है और आत्मरक्षात्मक प्रवृत्ति को अपनाती है।

नई परिस्थितियों के अनुसार अपने को डालने के लिए, जीवन की यथार्थता को झेलने के लिए, अपनी सुन्दरता को मिटाकर अनु हमें अपनी आधुनिकता का परिचय देती है – ''उसके कमर तक घने, लहराते बाल अब एकदम छोटे तराशे हुए काले क्लटोप की तरह उसका चेहरा घेरे हुए हैं। चेहरे पर मेकप बिल्कुल नहीं है, न वह ठिटुली, न नाक पर पहचानती हुई पाँच होरोंवाली लौंग, वह नेवी ब्लू स्कर्ट और सफेद ब्लाउज़ पहने हैं। उसके ऊपर डॉक्टरी कोट। ..... अब पहली नज़र में वह रूप आँखों में नहीं टकराता''[10]।

4.5. शेष यात्रा : समस्याएँ

4.5.1. सांस्कृतिक समस्याएँ

भारतीय संस्कृति की विशेषता यह है कि उसमें भावनाओं को बहुत महत्व दिया जाता है। पाश्चात्य संस्कृति में भावनाओं को कोई महत्व नहीं दिया जाता है। भारतीय पर चाहे पाश्चात्य संस्कृति का कितनी ही प्रभाव पडे उसके अन्दर भारतीयता की भावना छिपी रहती है।

बहुत आधुनिक होते हुए भी दो दिन की विधवा नमिता को रात में अपने बिस्तर पर आये देखकर प्रणव के अन्दर की भारतीयता को ठेस पहुँचती है। भारतीय सभ्यता के कारण ही तलाक के बाद भी प्रणव को अनु की याद आती है और उसका पता लगाता है। समय और भाग्य ने अनु के साथ क्या किया है, इसका पता लगाना वह अपना कर्म समझता है।

अनु को पाश्चात्य संस्कृति एवं प्रणव के साथ तालमेल नहीं कर पाती है। भारतीय संस्कृति नारी को यही सिखाती है कि किसी भी हालत में पत्नी के प्रति की इच्छाओं का पालन करना ही है। इसलिए अनु पाश्चात्य संस्कृति से एडजेस्ट कर लेती है।

भारतीय संस्कृति में किसी भी प्रतिकूल परिस्थिति के आने पर मानव भगवान का नाम लेते है। यही प्रवृत्ति अनु में भी दिखाई देती है। जब प्रणव उसे छोडकर चला जाता है तब वह सारी देवी–देवताओं से मन्नतें मांगती है। जैसे ''गॉड, ओ गॉड, हेल्प मी। मेरी मदद करो, मुझे शक्ति दो। ओ सत्ती मैया, ओ साय बाबा ..... मनसा देवी, तुम्हें चीर बांधूगी, विध्यावासिनी देवी, तुम्हें चुनरी उढाऊँगी, गंगा मैया, मैं भरे जाडो, तारों को छाह नहाऊंगी, मेरे प्रणव को मुझे लौटा दो, हनुमान जी, जिन्दगी भर मंगल का व्रत करूँगी। लक्ष्मी–नारायण, मैं सोने का छत्र चढाऊँगी, तिरूपति के स्वामी, तुम्हें .....''[11]। यद्यपि प्रणव अनु को छोडता है फिर भी वह मानता है कि उसने अनु के साथ अन्याय किया है। वह जानता है कि वह जो कुछ कर रहा है ठीक नहीं है। इसलिए पुनर्मिलन पर अपनी पिछली जिन्दगी के बारे में अनु से कहने के लिए वह हिचकता है।

इस प्रकार उषा प्रियंवदा ने 'शेष यात्रा' उपन्यास में तत्कालीन समाज में व्याप्त सामाजिक, पारिवारिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं के साथ–साथ प्रवासी भारतीयों के जीवन की हर एक समस्याओं को बडी बारीकी से चित्रित किया है।

4.5.2. आर्थिक समस्याएँ :

अर्थ समाज की धमनियों में बहनेवाला वह रक्त हो जो समाज की सभी गतिविधियों को नियंत्रित करता है। 'शेष यात्रा' में उच्च मध्यवर्गीय समाज का चित्रण किया है। इसमें लेखिका ने आर्थिक समस्या को भी चित्रित किया है। तलाक के बाद अनु अर्थाभाव का अनुभव करती है। नौकरी एवं पढाई साथ–साथ करते हुए उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पडता है। जैसे ''कुछ था, कुछ नौकरियों की, कुछ कर्ज लिए एक बार शुरुआत करके फिर छोडने का सवाल ही नहीं उठा। किसी न किसी तरह से, पेट के बल रंगते हुए सैनिक की तरह मैंने यह पुल पार कर ही लिया''[12]।

प्रस्तुत उपन्यास के अन्य पात्र जैसे दिव्या और जयंत आर्थिक समस्याओं का सामना करते है। दोनों पढाई के साथ नौकरी भी करते है। बाद में जयंत को नौकरी न मिलने पर भी वह अकेली नौकरी करके घर चलाने का साहस दिखाती है।

प्रणव पहले आर्थिक दृष्टि से बहुत दुरस्त था। इसलिए ही फिल्म बनाने के लिए वह नौकरी छोडकर चला जाता है। लेकिन बाद में उसकी आर्थिक स्थिति क्षीण हो जाती है और पैसे के लिए फिर नौकरी करता है।

4.5.3. अकेलेपन की समस्या :

आजकल एकाकी परिवार की प्रमुखता है। शहरों की भीड में यंत्रवत् जीवन बितानेवाला व्यक्ति निस्सहाय होकर अकेलेपन का अनुभव करने लगता है। परिवेश से कटकर वह अपने आपको अकेला महसूस करता है।

प्रस्तुत उपन्यास में अनु का जीवन इसका उदाहरण है। फलस्वरूप वह अत्यधिक आत्मकेन्द्रित हो जाती है और उसमें कष्ट, निराशा, विफलता आदि प्रवृत्तियाँ पनपती है। अनु के लिए अकेलापन अनिवार्य नियति है। अनु का अकेलापन समाज द्वारा दिया हुआ है। माँ–बाप के चल बसने के बाद अकेलेपन में ही उसकी जिन्दगी गुजरती है। अपनी शादी के वक्त भी वह अजनबीपन को अनुभव करती है।

जब उसने शादि की परिकल्पना भी नहीं की थी, तब पलक झपकते ही उसकी शादी प्रणव के साथ हो जाती है। प्रणव उसके लिए बिलकुल अपरिचित है, उसके साथ विदेश जाते हुए वह अजनबीपन का अनुभव करती है। उसे पहली बार लगा कि उसके लिए प्रणव एकदम अपरिचित है, वह उसके बारे में कुछ छिटपुट बातें छोडकर कुछ नहीं जानती। भारतीय सभ्यता एवं वातावरण में रहने के कारण अनु विदेशी सभ्यता से तादात्म्य नहीं स्थापित कर सकती है। विभा के घर जाकर उसके साथ समय बिताने पर उसे लगता है कि वह उस परिवेश का भाग नहीं है। जैसे, ''मेज पर विभा ने ढेर सारा खाना सजा दिया। शराब की बोतले खुलने लगी। अनु कुर्सी पर चुपचाप बैठी रही और सब कुछ ऐसे देखते रही कि वह इस दृश्य का केन्द्र नहीं, मात्र दर्शक हो''[13]।

प्रस्तुत उपन्यास में अनु तलाक के बाद अकेली रहती है, जीवन यापन करती है। अकेली जिन्दगी जीने के लिए वह अपने आप को परिस्थितियों के अनुसार डाल लेती है। जैसे अकेले जीवन के कडुवाहट को व्यक्त करती हुई अनु कहती है, ''एक अकेली औरत, वह भी अगर जवान हो और बहसूरत नहीं – उसे क्या क्या झेलना पडता है। यह सब मुझे बहुत मुशिकल तरीके से ही सीखना पडा। अब देखिए मैं ने सुन्दरता का अभिशाप मिटा दिया है .....''[14]।

जब अनु को अकेलापन से मुक्ति मिलती है तब प्रणव अकेला हो जाता है। अपनी मर्जी से बहुत कुछ जीने के बाद एक विरक्ति से सब कुछ छोडकर प्रणव अकेलेपन को स्वयं ही स्वीकार करता है। जैसे वह कहता है, ''जब मैं कहता हूँ कि मैं अकेला हूँ तो उसका मतलब है एकदम अकेला और संतुष्ट। अकेलेपन के इस दार्शनिक पक्ष को व्यक्त करते हुए प्रणव कहता है, ''अल्टिमेटली तो हमें अकेले ही सब झेलना पडता है। बेहोशी का इंजक्शन मिलने और चेतना खोने, के बीच दो–तीन सेकेंड होते है – जिन्दगी और मौत के बीच का वह रास्ता अकेले ही पार करना पडता है और जानती हो अनु – एक बार वह झेल लेने पर किसी चीज़ से डर नहीं लगता। मौत से भी नहीं''[15]। कभी–कभी व्यक्ति अकेलापन का आदी हो जाता है कि उसमे एक प्रकार की निर्लिप्तता का भाव आ जाता है। अकेलेपन के इस दार्शनिक रूप को बहुत मार्मिक ढंग से उषा जी ने प्रस्तुत उपन्यास में पात्रों द्वारा उद्‌घाटित किया है।

4.5.4. दाम्पत्य–जीवन से सम्बन्ध विभिन्न समस्याएँ :

पारिवारिक जीवन का प्रमुख आधार है पति–पत्नी के परस्पर सम्बन्ध। सुखी

दाम्पत्य जीवन ही परिवार की सुख–समृद्धि में सहायक हो सकता है। दाम्पत्य जीवन में असफलता या असंतोष अनेक समस्याओं को जन्म देता है। वर्तमान युग में नारी स्वातंत्र्य की माँग ने दाम्पत्य जीवन को दूर तक प्रभावित किया है।

विवाह के बंधन बंध हो जाने पर पुरुष और नारी, पति–पत्नी के रूप में जीवन आरंभ करते हैं। पति को परमेश्वर और पत्नी को दासी मानने वाली स्थितियाँ भी सामने आती है। अधिकार और कर्तव्य का द्वन्द्व भी उपस्थित होता है। पति–पत्नी की भिन्न–भिन्न रुचियाँ और विचारों को लेकर संघर्ष की संभावना निहित रहती है। वैचारिक असंतोष कभी–कभी इस हद तक बढ़ जाता है कि दाम्पत्य जीवन का प्रवाह ही अवरुद्ध हो जाता है और फलस्वरूप विवाह विच्छेद तथा बहुविवाह जैसी स्थितियाँ सामने आती है। उषा प्रियंवदा जी ने शेष यात्रा में इन सभी स्थितियों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में प्रणव अपनी पत्नी अनु को इसलिए प्रेम नहीं कर पाता कि उसे अपनी पत्नी में व्यक्तित्व का वह विकास नहीं मिलता, जिसकी वह अपेक्षा रखता है। यही कारण है कि वह बात–बात पर झुंझला उठता है। दाम्पत्य जीवन में उत्पन्न असंतोष विवाह–विच्छेद की समस्या को जन्म देता है। हिन्दु समाज में विवाह को एक पवित्र बन्धन माना गया है जो दो हृदयों को जोडता है। कच्चे धागे का कंगन पवित्र धर्म की हथकड़ी है जो कभी हाथ से नहीं निकलती और मंडप उस प्रेम की छाया का स्मारक है, जो आजीवन सिर पर बनी रहती है।

बहुपत्नीत्व की समस्या भी दाम्पत्य जीवन की समस्या से सम्बद्ध है। भारतीय परिवारों में इस समस्या के जन्म के अनेक कारण है। जब पुरुष एक पत्नी के जीवित होते हुए एकाधिक विवाह करता है। तब नारी की पारिवारिक स्थिति और भी दयनीय हो जाती है। अनेक प्रश्न एक साथ सामने आते है। अनेक चित्र बनते–बिगडते है। पुरुष तो पागलपन में भी अपने लिए स्थान खोज सकता है किंतु नारी अपने को लेकर कहाँ जाए।

विवाह–विच्छेद की समस्या दाम्पत्य जीवन की एक ज्वलंत समस्या है। पुराने जमाने में तलाक सामाजिक व धार्मिक दृष्टि से अनुचित माना जाता है। वर्तमान समाज में तलाक की समस्या निरंतर बढ़ती ही जा रही है। छोटी–छोटी समस्याओं को लेकर भी पति–पत्नी का अहम एक दूसरे से टकराता है, तब तलाक की आवश्यकता हो जाती है। परंतु आंतरिक रूप से नारी बिखर जाती है। पुरुष पुन : परिवार का सृजन कर लेता है, किंतु भारतीय नारी अपनी संस्कृति से रूढियों, परंपराओं से प्रभावित होकर कठोर साधनामय जीवन व्यतीत करने हेतु विवश होती है।

प्रस्तुत उपन्यास में तलाक के बाद तो तुरंत ही चंद्रिका से शादी कर लेता है। लेकिन अनु मानसिक रूप से बिखर जाती है। वह मन ही मन यह स्वीकार करने में असफल हो जाती है कि अब कानूनी तौर से उसके और प्रणव के बीच कोई संबंध नहीं है। अनु सोचती है, "रस्म अदाई से न तो विवाह होते हैं, न तलाक"। दिल की एक अपनी गति होती है, भावनाएं, अनुभूतियाँ उगती है, पनपती है, फिर उन्हें सूखने में भी समय लगता है"[16]।

प्रस्तुत उपन्यास में अनु एवं प्रणव की विवाह अनमेल रहता है। पहली मुलाकात में ही प्रणव अनु के सौंदर्य के प्रति आकर्षित होकर उसे शादी करने का निश्चय करता है जबकि उसका विवाह संबंधी मान्यता इससे बिल्कुल भिन्न थी। अनु, बिना सोचे समझे प्रणव को अपना सर्वस्व समर्पित कर देती है। फलस्वरूप दोनों का वैवाहिक संबंध तलाक में परिणत होता है। इस अनमेल विवाह के बारे में प्रणव सोचता है, ऐसी शादियाँ हमेशा रिस्क होती है। एक छोटी सी मुलाकात, सिर्फ चेहरा देखकर पसंद कर लेना, आगे स्वभाव कैसे निकलेगा, पटेगी या नहीं, यह सब कहना बडा मुश्किल होता है''[17]। परंतु दीपांकर अनु को अपने पैर की जूति नहीं समझता। अनु के स्वतंत्र अस्तित्व को दीपांकर स्वीकार करता है। गृहस्थी में पति–पत्नी के बराबर की जिम्मेदारी को वह स्वीकार करता है। अनु के प्रति दीपांकर उदार दृष्टिकोण रखता है। पति होने के नाते पत्नी को पूर्ण रूप से अपने नियंत्रण में रखने का सिद्ध नहीं करता।

विदेशी सभ्यता से प्रभावित होने के कारण प्रणव नैतिकता का पालन करना आवश्यक नहीं समझता है। विवाह के पूर्व और बाद वह कई स्त्रीयों से अनैतिक संबंध रखता है। किसी के साथ भी स्थाई संबंध नहीं रखता है। आजकल शराब पीने, सभा सोसाइटियों में शामिल होने, क्लबों में जाना, वहाँ एक दूसरे की पत्नियों से हंसने बोलने, उनके हम बिस्तर होने में भी आधुनिकता देखी जाती है। प्रणव भी ऐसा पात्र है जो विभा, चन्द्रिका, नमिता आदि अनेक स्त्रियों के साथ व्यभिचार करता है। यहाँ तक कि व्यभिचार के पीछे ही उसका दांपत्य संबंध शिथिल होता है और प्रणव अनु को तलाक दे देने का स्पष्ट विचार कर लेता है। प्रणव कहता है ''हमारा–तुम्हारा साथ रहना असंभव है। मैं फ्री होना चाहता हूँ''[18]।

आधुनिक समाज में ऐसे पुरुषों की संख्या दिन–व–दिन बढ़ती जा रही है जो कि अपनी पत्नी के अलावा अन्य स्त्रियों के साथ अनैतिक संबंध रखते हैं। लेखिका ने ऐसे लोगों के मुखौटों को उतारकर उनका सही रूप सामने प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। उपन्यास का नायक प्रणव इसका प्रमुख उदाहरण है।

4.5. निष्कर्ष :

आधुनिक नारी परम्परागत वर्जनाओं से मुक्ति पाने का हर संम्भव प्रयास कर रही है। आज धीरे–धीरे हर निर्णय लेने में वह स्वतन्त्र होती जा रही है और पूर्णत्व की खोज में प्रयत्नशील है। वह अपने व्यक्तित्व के प्रति भी सजग है।

'शेष यात्रा' उपन्यास में नारी स्वत्व के विकास को इस प्रकार चित्रित किया गया है। उपन्यास की नायिका अनुका प्रणव कुमार से तलाक के बाद भारत लौटती नहीं है। शिक्षा प्राप्त करके अपना अलग अस्तित्व स्थापित करती है। सात समुद्र पार परायी धरती पर स्वावलंब की राह चुनती है और एक नया घर–संसार बसाती है।

पति द्वारा उपेक्षिता अनु परंपरागत नारी के समान अपने भाग्य पर रोना छोड देती है। वह अपने पति के बराबर बनने का दृढ़ निश्चय करती है। अगर प्रणव उसे छोडकर दूसरी जिन्दगी शुरू कर सकता है तो वह भी प्रणव से बिछड़कर कुछ बन सकती है। जैसे अनु कहती है, "मालूम नहीं मेरे अन्दर इतना तेज़, इतना क्रेज़, कहाँ से आ गया। मुझे लगा मैं कुछ भी बन सकती हूँ....."[19]। वह समझती है कि भारत का दरवाज़ा उसके आगे बन्द हो चुका है। वह आगे पढ़ती है और डॉक्टर बन जाती है। वह अपनी सहेली दिव्या का भाई दीपांकर से शादी करके सुखी जीवन बिताती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. उषा प्रियंवदा, शेष यात्रा, पृ. 11
2. ——वही—— पृ. 15
3. ——वही—— पृ. 25
4. ——वही—— पृ. 27
5. ——वही—— पृ. 63
6. ——वही—— पृ. 70
7. ——वही—— पृ. 45
8. ——वही—— पृ. 33
9. ——वही—— पृ. 108
10. ——वही—— पृ. 103. 104
11. ——वही—— पृ. 56
12. ——वही—— पृ. 107
13. ——वही—— पृ. 98
14. ——वही—— पृ. 110
15. ——वही—— पृ. 108
16. ——वही—— पृ. 79
17. ——वही—— पृ. 89
18. ——वही—— पृ. 63
19. ——वही—— पृ. 111

पंचम अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

आधुनिक महिला कथाकारों में अपने अनुभव संसार की विशिष्टता और अभिव्यक्ति की कलात्मकता के कारण उषा प्रियंवदा अलग से पहचानी जाती रही है। हिन्दी में उषाजी उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में मशहूर है। उनकी जीवन दृष्टि व्यक्तिवादी है। एक व्यक्ति के रूप में नारी की निज समस्याओं का स्वरूप लेखिका ने वर्णन किया है। भारतीय नारी को नये बदले हुए परिवेश में प्रतिष्ठित करके उसके अन्तर्मन की परख करने में उषा प्रियंवदाजी की निपुणता जरूर प्रशंसनीय है। उन्होंने आधुनिक नारी की दुविधा को विशेषकर उसके कटेपन को, उसके अकेलेपन और अजनबीपन को हमारे सम्मुख खोलकर दिखाया है। उनकी रचनाओं में आधुनिकता बोध उजागर होता है। कृति पर कृतिकार के जीवन और व्यक्तित्व का प्रभाव अवश्य पडता है।

नारी की समस्याओं के समावेश ने उषाजी के उपन्यासों के सौंदर्य की वृद्धि की है। परन्तु समस्याएँ उपन्यासों का मुख्य भाग नहीं, मुख्य भाग तो है मानव चरित्र की व्याख्या, क्योंकि, ''सब आदमियों के चरित्र में बहुत कुछ समानता होते हुए कुछ भिन्नताएँ भी होती है। यही चरित्र संबंधी समानता और विभिन्नता, अभिन्नत्व में भिन्नत्व और विभिन्नत्व में अभिन्नत्व दिखाना उपन्यास का मुख्य कर्तव्य है''[1]।

हिन्दी के प्रगतिशील साहित्यकारों में उषाजी का स्थान अग्रणीय है। हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओं में उषाजी ने अपना कार्य किया है। उपन्यास उषाजी की सर्वाधिक प्रियविधा है। उषाजी ने अपने उपन्यासों में नारी का चित्रण मार्मिक ढंग से किया है। मुख्यतः उषाजी की कथानकों के केन्द्र में नारी चेतना है। आपकी नारी–सृष्टि पर आध

ुनिकता के गहरे दबाव है। नारी के निर्माण में यथार्थ का अनुभव देखा जा सकता है, तथा नारियाँ अपनी संश्लिष्ट बनावट के कारण आन्तरिक द्वन्द्व से गुजरती है, उसका परिणाम यह होता है कि एक से अधिक पुरुष पात्र उनके जीवन में आते जाते है। उषाजी नारी–सृष्टि में जिस जीवन यथार्थ को प्रमुखता देते है, वह सामायिक संदर्भों का उपज है।

आधुनिक काल में नारी के प्रति नयी दिशा में विचार आरंभ हुआ। अंग्रेजी शासन काल में पुनर्जागरण व पुनरुत्थान की आवश्यकता समाज के हितचिंतकों ने महसूस की व अनेक सुधार आंदोलन चलाये। कई समाज सुधारकों ने इसके लिए निष्ठा से काम किया जैसी राजाराममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, केशवचन्द्र सेन, महादेव गोविंद रानडे, स्वामी परमहंस, विवेकानंद, एनीबेसेंट। इन सुधार आन्दोलनों के परिणामस्वरूप नारी चैतन्य हुई।

राजनीतिक और सामाजिक गतिविधियों ने उसे विचार शक्ति प्रदान की, व्यक्ति और समष्टि के प्रति जागरूक नारी में एक व्यक्तिवादी विचारधारा पनपी। पचास के दशक के बाद हमारा समाज विशेष रूप से परिलक्षित हुई। फलस्वरूप जिसने नारी की स्थिति में सुधार उसकी आज़ादी व हक्कों के लिए संघर्ष शुरू कर दिया गया। इस प्रकार समाज सुधार आन्दोलन व स्वतंत्रता के संघर्ष के साथ–साथ भारत में नारी आन्दोलन ने भी जोर पकड़ा। यह नारी आन्दोलन मुख्यत: दो प्रकार के रहे –

1. समान अधिकारों के लिए आन्दोलन

2. नारी मुक्ति आन्दोलन

इन पर जहाँ पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव रहा वहीं भारतीय चिंतन, महात्मा गाँधी जैसे विचारकों का भी इस पर प्रभाव पड़ा। इन सबकी पृष्ठभूमि में आधुनिक नारी को कई ऐसी स्थितियों का सामना करना पड़ा जो सर्वथा नई है। आधुनिक कालीन हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं में नारी के परम्परागत नवीन रूपों का चित्रण मिलता है।

उपन्यासकार एवं कहानिकार के रूप में उषाजी ने अपने लेखन के बल पर अपने आपको सशक्त साहित्यकार के रूप में स्थापित किया है। उपन्यास में नारी की ही केन्द्र रखकर चित्रण करने में प्रियंवदाजी ने सफलता हासिल की है।

साहित्यकार की व्यक्तित्व उसकी कृतियों में अवश्य निहित रहता है। उषाजी का व्यक्तित्व बहु आयामी है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी है। साहित्यकार की अभिव्यक्ति में उनके सामाजिक जीवन की शाब्दिक–अभिव्यक्ति अधिक महत्वपूर्ण होती है। कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में हमारे सामने आती है। साहित्यकार के मन में हमेशा के लिए संघर्ष चलता रहता है।

उषाजी की प्रतिभा विलक्षण है। उषाजी परिश्रमी और अध्ययनशील महिला है। उनका साहित्यिक अध्ययन बहुत गहरा है। उषाजी की अध्ययनशीलता, परिश्रमशीलता, जिज्ञासावृत्ति और व्यापक विचारों ने उन्हें महान साहित्यकार बना दिया।

हिन्दी महिला लेखिकाओं में उषा प्रियंवदाजी एक श्रेष्ठ और बहु चर्चित कहानिकार और उपन्यासकार है। उपन्यास में नारी चित्रण करना ही उनका मुख्य उद्देश्य है। उषाजी का नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण है। क्योंकि उन्होंने नारी की देहगाथा की शब्द चित्रों में बांधने का साहसिक प्रयत्न किया है। महानगरीय नारी संस्कृति और सभ्यता तथा पारिवारिक संस्कृति की मिश्रण को अपने उपन्यास का विषय बनाया है। वे हमेशा यथार्थ का निरन्तर तलाश करती है।

उषाजी की रचना–प्रक्रिया की सफलता उनके नारी पात्रों के चित्रण में निहित है।

उषाजी के निम्न तीन उपन्यासों में नारी का चित्रण मार्मिक ढंग से हुआ है –

1. पचपन खम्भे लाल दीवारें
2. रुकोगी नहीं राधिका
3. शेष यात्रा

उषाजी के तीनों उपन्यासों में हम देखते हैं कि एक रचनाकार के रूप में वे बराबर उन्नत धरातल प्राप्त करती है। तीनों उपन्यास नारी की समस्याओं से भरपूर है। वह अपने समय को अतिक्रांत करता हुआ, सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत नारी दुर्भाग्य की एक कथा बन जाता है जिससे नारी उत्पीडन का चित्र बन जाती है और अपने दुर्भाग्य से लडते हुए महत्ता प्राप्त करती है।

पारिवारिक उत्तरदायित्व और समाज के विरोध के कारण प्राचीन काल में स्त्री का व्यक्तित्व सीमित था। लेकिन नारी में भी जागरण आया। आधुनिक युग में नारी को

अपने व्यक्तित्व के विकास करने का मार्ग खुला हुआ है। आर्थिक रूप से स्वतंत्र नारी आज पुरुष की समर्पिता न रहकर पुरुष से मुक्त होना चाहती है। पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित पुरुष नारी को सिर्फ गृहणी के रूप में ही नहीं देखना चाहता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नारी स्वयं अपने जीवन की दिशा चुनने लगी। शिक्षित नारी के लिए वर्तमान ही सब कुछ है और अतीत निरर्थक है। परंपराएँ, रूढियाँ, उसके लिए मूल्यहीन है। उषा प्रियंवदा स्वातंत्रयोत्तर काल लेखिका है इसलिए उनके साहित्य पर 'नारी अस्मिता', 'नारी स्वत्व', नारी अधिकार संबंधित विषयों पर काफी प्रभाव पड़ा है। उनके उपन्यास में नारी स्वत्व को उद्घाटित करने के लिए नारी की सामान्य और असामान्य मन :स्थिति का विश्लेषण किया गया है।

उषाजी ने अपने उपन्यासों में जिन चरित्रों की सृष्टि की है वे बेजोड़ है। उन्होंने आधुनिक युग के आर्थिक परेशानियाँ, संस्कार, जीवन की समस्याएँ, व्यक्तिवादी रूढियाँ, सामाजिक मूल्य, इत्यादि को पाठक वर्ग के समक्ष एक चुनौती के रूप में रखा है। आज का आधुनिक समाज विषम परिस्थितियों से जूझ रहा है। आज की नारी भी इसी समाज का एक अभिन्न अंग है, खासकर उसे ही विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। नारी अपनी परिस्थितियों का हटकर मुकाबला करने को तत्पर है और इसलिए कभी–कभी वह विद्रोह करती है। वह अतीत और वर्तमान के प्रति असंतुष्ट होते हुए भी वह अपने अस्तित्व की रक्षा करती है। फिर भी उसे समर्पण करना ही पड़ता है। इस संदर्भ में डॉ. वर्मा का कथन दृष्टव्य है – एक ओर पूर्ण व्यक्तित्व की खोज और दूसरी ओर इस खोज के मार्गों की भीषण बाधाएँ, इन दोनों दबावों के बीच चरमराती हुई आधुनिक नारी अपने

व्यक्तित्व की सुरक्षा न कर सकने की मज़बूरी में बाधाओं से समझौता लेती है। और अंत : समर्पित होकर रह जाती है। परन्तु इसके बावजूद नारी की जिजीविषा ही उसकी प्रेरणा दायिनी छोटा शक्ति है। स्वरचना उसके जीवन का सर्वोपरी लक्ष्य है। नारी अपनी जिजीविषा की प्रेरणा से सभी अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियों को स्वीकारती है। वह इन परिस्थितियों से जूझती हुई अपनी मान्यताओं, इच्छाओं, आदर्शों को इसी जिजीविषा के ऊपर न्योछावर कर देती है। जिजीविषा ही उसे समझौता करने को बाध्य करती है। जिजीविषा के साथ किसी भी प्रकार का समझौता ही उसका प्रथम, अन्तिम और सबसे महत्वपूर्ण समझौता है।

स्वातंत्रयोत्तर युग में लेखकों की लेखन शैली में बदलाव आया है। उनके साहित्य में भी जिजीविषा को महत्व दिया जाने लगा है। आधुनिकता बोध, वैज्ञानिक चिन्तन इस समय की उपलब्धियाँ है। अस्तित्व के प्रति जागृति की भावना उनके साहित्य में चित्रित होती है। उषा प्रियंवदा भी समर्पण या पलायन की भावना को अपनी रचनाओं में कोई स्थान नहीं देती है। उनको परिस्थितियों से जूझने की प्रेरणा देते है।

सशक्त चरित्र की सृष्टि उपन्यास की कथावस्तु के ताने–बाने में पारिवारिक समस्याओं का गूंथना, पात्रों का प्रयत्नशील रहना ये सारी बातें लेखिका ने अपने उपन्यासों में बडी खूबसूरती से गूंथ दी है। इनके उपन्यास आधुनिक समाज, खासकर नारी में जागृति और चेतना उत्पन्न करने में सक्षम है, भारतीय समाज की जटिल व रूढिवादी समस्याओं और विदेश की स्वच्छंदता को इन्होंने बखूबी उभारा है। इन्होंने व्यक्ति की उत्पीड़ित करनेवाली सामाजिक, धार्मिक रूढियों के विरुद्ध, आर्थिक विषमता के विरुद्ध

अपनी रचनाओं में एक आवाज उठाई है। उषाजी नारी को उन्नति के मार्ग पर देखना चाहती है। इसलिए इन्होंने नारीवर्ग की विभिन्न समस्याओं को, परम्परागत, सामाजिक कुरीतियों एवं अंधविश्वासों, स्वच्छंद यौनाचार आदि को अपने उपन्यासों की कथावस्तु में कलात्मक ढंग से गूंथा है।

उषाजी के इन तीन उपन्यासों के विभिन्न समस्याओं का समावेश निम्न प्रकार से हुआ है।

क. पचपन खम्भे लाल दीवारें :

इस उपन्यास में दहेज की कुप्रथा, नारी की पराधीनता, पारिवारिक जिम्मेदारियों का अनचाहा बोझ आदि को दर्शाया गया है।

ख. रूकोगी नहीं राधिका :

व्यक्ति की प्रबल जिजीविषा, नारी का मानसिक द्वंद, बेमेल विवाह, विदेश भ्रमण की तीव्र इच्छा, स्त्री–पुरुषों के अधिकारों में विभेद आदि समस्याएँ इस उपन्यास में है।

ग. शेष यात्रा :

शेष यात्रा उपन्यास में पश्चिमी सभ्यता का आक्रमण, दाम्पत्य सुरब की समस्या, नारी सम्मान की समस्या और निरुद्देश्य आनन्द की प्राप्ति आदि समस्याओं को दर्शाया गया है।

लेखिका के तीनों उपन्यासों में समस्याएँ अलग–अलग है। पर तीनों की कथावस्तु नारी से शुरु होकर नारी पर ही खत्म होती है। नारी ही आद्यांत आकर्षण बिन्दु है।

आधुनिक युग की महिला साहित्यकारों ने सामाजिक रूढि–रीतियों के जुलम, उससे उत्पन्न होनेवाली नारी की पीड़ा, यंत्रणा आदि को जिस बेचैनी के साथ अनुभव किया उनमें उषाजी का नाम उल्लेखनीय है। इनके उपन्यासों में नारी की हर मनोवृत्ति को बडे सजीव ढंग से दर्शाया गया है। इसलिए इसमें कल्पना की मात्रा बहुत कम है और यथार्थ ज्यादा। समाज की बागड़ोर साहित्यकार के हाथ में होता है। इसलिए साहित्यकार का ये फर्ज है कि समाज में जो कुछ असुन्दर है, अभद्र है, मनुष्यता से रहित है, उस पर वह शब्दों और भावों की संपूर्ण शक्ति से प्रहार करें, और जो दलित है, पीडित है, वंचित है ..... चाहे वह व्यक्ति हो या समूह ..... उसकी हिमाकत और वकालत करें। अदालत समाज है। इसी अदालत के सामने उसे अपना दावा पेश करना है, और यही उषाजी ने अपने तीनों उपन्यासों में किया है।

नारी–स्वत्व–अस्मिता–समस्या क्षेत्र उषाजी के अपने अनुभव संसार का हिस्सा है। इसलिए उन्होंने अपने कथानक, पात्र और परिस्थिति को उसी नारी–परिधि से चुनते है। इनका भारतीय संस्कृति से जन्म से ही सम्बन्ध रहा है, अतः भारतीय संस्कृति से इनका प्रभावित होना स्वाभाविक है। उषाजी ने यद्यपि आगे चलकर पाश्चात्य संस्कृति के संपर्क में आने पर उनकी कुछ विशेषताएँ भी ग्रहण की। किंतु भारतीय संस्कृति और सभ्यता के पूर्ण समर्थक तथा प्रशंसक है। इन्होंने अपने जीवन–दर्शन के निर्माण में भारतीय संस्कृति में आ गये कुप्रवृत्तियों को उनका स्वस्थ मन कभी स्वीकार नहीं कर सका। पाश्चात्य संस्कृति से इनका निकट संपर्क है। अतः इन्होंने उनसे भी बहुत से तत्व ग्रहण किए और अपनी मनोभावना को अपनी रचना के माध्यम से प्रकट किया।

नारी जो कि अबला कही जाती है, उषाजी के लिए अबला नहीं है। नारी स्वयं शक्ति का प्रतीक है। उसके चरित्र में जैसी गंभीरता दृढता, कर्मठता और ज्ञान है वही गुण लेखिका के नारी पात्रों में है। नारी को संघर्ष करना चाहिए, किसी भी परिस्थिति का सामना करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। यही संदेश उन्होंने दिया है। विदेश प्रवासी होने के कारण ये विदेश के प्रति आकृष्ट है। इसलिए इनके उपन्यासों में विदेशी परिवेश भी चित्रित किया है। नारी की समस्याएँ, नारी के मानसिक विकास, नारी की असहाय अवस्था, उसका दृढ निश्चय, आत्मबल, जीने की उत्कट चाह सब कुछ इन्होंने नारी के इर्द–गिर्द हो रखा है। नारी इनके भावनाओं को प्रकट करने का मुख्याधार है। नारी मनोविज्ञान का इन्होंने अच्छा प्रदर्शन किया है। कथा निरूपण में भी सिद्धहस्त है। कल्पनाशीलता और जीवनानुभव से इन्होंने नारी को पूर्णतया समझा है इसलिए नारी मन को इतने सजीव ढंग से ये व्यक्त कर पाई है। मध्यवर्गीय नारी के दुख, समस्याएँ, पीड़ा आदि को इन्होंने अनुभव किया है। मध्यवर्ग सबसे अधिक संघर्षशील है। आधुनिकता और सम्पन्नता को पाने के लिए मध्यवर्ग पूरी कोशिश करता है लेकिन सफलता उसे नहीं मिल पाती और मिलती भी है तो वह उससे संतुष्ट नहीं हो पाता। उषाजी ने अपने कथ्य का आधार मध्यवर्गीय नारी को इसलिए चुना है कि उच्चवर्ग और निम्नवर्ग की नारी के जीवन में इस प्रकार की समस्याओं की कमी है।

नारी समस्या की भित्ति पर अपने उपन्यासों की कथावस्तु खड़ी करके लेखिका ने अपने युग और सामाजिक परिवेश के प्रति अपना दायित्व संपूर्ण निष्ठा के साथ निभाया है। इसी निष्ठा के फलस्वरूप इनकी रचनाओं में इतनी शक्ति और ओज है। जो कि

पाठक को नारी के स्वत्व, उसकी अस्मिता पर सोचने को विवश कर देता है। लेखिका के पात्र अविस्मरणीय है। ये हमारे अतःकरण को प्रकाशित करते है, प्रेम की परिधि को विस्तृत करते हैं और नैतिक दुर्बलतओं को दूर करके अच्छा इन्सान बनने को प्रोत्साहित करते है। पचपन खम्भे लाल दीवारें उपन्यास की नायिका सुषमा, 'रूकोगी नहीं राधिका' उपन्यास की नायिका राधिका और 'शेष यात्रा उपन्यास की नायिका–अनुका आदि का पारिवारिक विकास समयानुकूल है। चारित्रिक विकास की कला उपन्यास की जान कही जा सकती है। उदाहरणार्थ इन तीनों की चारित्रिक विकास शनैः शनैः होते–होते अपनी चरम पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है और यही बताना उषाजी का उद्देश्य है।

संदर्भ ग्रंथ

1. प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, पृ. 54.

संदर्भ ग्रंथ सूची

क्र. सं	ग्रंथ का नाम	लेखक	प्रकाशन
मूलग्रंथ :			
1.	पचपन खम्भे लाल दीवारे	उषा प्रियंवदा	राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. 1बी, नेताजी सुबाष मार्ग नई दिल्ली 110 002 द्वि. सं. 1991
2.	रुकोगी नहीं राधिका	उषा प्रियंवदा	अक्षर प्रकाशर प्रा. लि. 2/36, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110 002 द्वि. सं. 1986
3.	शेष यात्रा	उषा प्रियंवदा	राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. 1बी, नेताजी सुबाष मार्ग नई दिल्ली 110 002 द्वि. सं. 1991
4.	ज़िदगी और गुलाब के फूल	उषा प्रियंवदा	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली. च. सं. 1975
5.	मेरी प्रिय कहानियां	उषा प्रियंवदा	राजपाल & सन्स, दिल्ली. प्र. सं. 1974
संदर्भ ग्रंथ :			
6.	अद्यतन हिंदी उपन्यास	बिन्दु भट्ट	पार्श्व प्रकाशन, निशापोल, जवेरी वार्ड, टिलीफ रोड, अहम्मदाबाद–380 001 प्र. सं. 1993
7.	आठवें दशक के हिंदी उपन्यास	डॉ. रजनीकान्त जैन	दिग्दर्शन चरण जैन ऋषभचरण जैन एवं सन्तति, 4697/5–21 ए दरियागंज नई दिल्ली 110 002 प्र. सं. 1988

8.	आज का हिंदी उपन्यास	डॉ. हेमराज कौशिक	ललित प्रकाशन शाहदरा, दिल्ली 110 032 प्र. सं. 1988
9.	आधुनिक उपन्यास विविध आयाम	डॉ. विवेकराय	अनिल प्रकाशन 189ए/1 अलोपी बाग इलाहाबाद प्र. सं. 1990
10.	अस्तित्ववाद और नई कहानी	डॉ. लालचन्द गुप्त 'मंगल'	शोध प्रबन्ध प्रकाशन दिल्ली–7
11.	आधुनिक बोध और परंपरा	डॉ. ललिता प्रसाद सक्सेना	निर्मल प्रकाशन डी 163 बापू नगर जयपुर–4.
12.	आधुनिक हिंदी कहानी साहित्य में समसामयिक जीवन की अभिव्यक्ति	डॉ. प्रेमचन्द्र नारायण सिन्हा	अनुपम प्रकाशन पटना – 4.
13.	आधुनिक बोध	रामधारी सिन्ह दिनकर	पंजाबी पुस्तक भंडार, दिल्ली – 6.
14.	आधुनिकता : एक पहचान	डॉ. चन्द्रभान रावत डॉ. राजकुमार खंडेलवाल	देवनगर प्रकाशन चौडा रास्ता, जयपुर.
15.	आधुनिकता और हिंदी उपन्यास	इंद्रनाथ मदान	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली.
16.	कहानी और कहानीकार	डॉ. सुमनकुमार 'सुमन'	सूर्यप्रकाशन नई सडक, नई दिल्ली. प्र.सं. 1989
17.	नई कहानी : विघटन और विसंगति	डॉ. रामकली सराफ	संजय बुक सेंटर के.38/6 गोल्घर वाराणसी 221 001 प्र. सं. 1988

18.	महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ	डॉ. शील प्रभा वर्मा	विद्या विहार, 106/154 गांधी नगर, कानपुर–12. प्र. सं. 1987
19.	महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता	डॉ. शशि जेकब	जवाहर पुस्तकालय सदर बाज़ार, मथुरा, उत्तर प्रदेश–281002 प्र. सं. 1989
20.	समकालीन कहानी : कथ्य एवं शिल्प	डॉ. सविता मोहन	ग्रंथायन सर्वोदय नगर, अलीगढ 202001
21.	साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में युवा पीढी	जी. पद्मजा देवी	मिलीन्द प्रकाशन सुलतान बाज़ार, हैदराबाद–500 195 प्र. सं. 1991
22.	साठोत्तरी हिंदी उपन्यास	डॉ. पारूकान्त देशाय	सूर्य प्रकाशन, नई सडक, दिल्ली–6. प्र. सं. 1984
23.	साठोत्तर हिंदी कहानी	के.एस. मालती	लोकभारती प्रकाशन 15ए महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद – 1 प्र. सं. 1991
24.	साठोत्तर हिंदी उपन्यासों में नारी	डॉ. किरण बाला आरोडा	अन्नपूर्ण प्रकाशन साकेत नगर कानपूर – 208014 प्र. सं. 1990
25.	स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास	डॉ. लक्ष्मी सागर वाष्णीय	राजपाल & सन्स दिल्ली 110 006 प्र. सं. 1988

26.	स्वातंत्रयोत्तर हिंदी उपन्यास : मूल्यसंक्रमण	डॉ. हेमेन्द्र कुमार पानेरी	संघी प्रकाशन चौडा रास्ता, जयपुर 302 003 प्र. सं. 1974
27.	स्वातंत्रयोत्तर हिंदी उपन्यासों में वैचारिकता	डॉ. आशा मेहता	भारतीय ग्रंथ निकेतन दरियागंज नई दिल्ली 110 002 प्र. सं. 1988
28.	स्वातंत्रयोत्तर कथा लेखिकाएँ	ऊर्मिला गुप्ता	राधाकृश्ण प्रकाशन दरियागंज दिल्ली – 6.
29.	साहित्यिक साक्षात्कार	डॉ. रणवीर रांगा	पूर्वोदय प्रकाशन 7/8 दरियागंज नई दिल्ली–2 क.स. 1985
30.	हिंदी कथा साहित्यः समकालीन संदर्भ	डॉ. ज्ञान अस्थाना	जवाहर पुस्तकालय सदर बाज़ार मथुरा–281 002 प्र. सं. 1981
31.	हिंदी उपन्यास	डॉ. सुरेश सिन्हा	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद–1 द्वि. सं. 1972
32.	हिंदी उपन्यास : एक अध्ययन	अशोक के.शाह प्रतीक	वर्तिका प्रकाशन नई दिल्ली–110 084
33.	हिन्दी उपन्यास : सातवां दशक	जयश्री बरहाटे	संचयन 124/152 सी गोविंद नगर कानपुर–208 006 प्र. सं. 1988
34.	हिंदी उपन्यास : प्रेमचन्दोत्तर काल	रामशोभित प्रसाद सिंह	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद–1 प्र. सं. 1981

35.	हिंदी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन	डॉ. रमेश तिवारी	रचना प्रकाशन इलाहाबाद – 1 प्र. सं. 1972
36.	हिंदी उपन्यास और जीवन मूल्य	डॉ. मोहिरी शर्मा	साहित्याकार जयपुर–302 003 सं. 1986
37.	हिंदी उपन्यास : प्रेम और जीवन	डॉ. शान्ति भरद्वाज	सुशील प्रकाशन अजमेर. प्र. सं. 1969
38.	हिंदी लेखिकाओं के स्वातंत्रयोत्तर उपन्यासों में पुरुष कल्पना	डॉ. ऊर्मिला प्रकाश	चिन्ता प्रकाशन दिल्ली–110 092 प्र. सं. 1991
39.	हिंदी उपन्यासों में व्यक्तिवादी चेतना	डॉ. एन.के. जोसफ	जवहर पुस्तकालय मथुरा–280 001 प्र. सं. 1989
40.	हिंदी उपन्यासों में रूढिमुक्त नारी	डॉ. राजरानी शर्मा	तन्मय अग्रवाल साहित्य मंडल, दरियागंज, नई दिल्ली.
41.	हिंदी कहानी के सौवर्ष	डॉ. वेदप्रकाश अमिताब	मधुवन प्रकाशन मथुरा प्र. सं. 1988
42.	हिंदी उपन्यास : यात्रागाथा	प्रो. शशिभूष्ण सिंहल	दिग्दर्शन चरण जैन दरियागंज नई दिल्ली 110 002 सं. 1985

पत्र–पत्रिकाएं

1. ज्ञानोदय, मेरी सृजन प्रक्रिया–अगस्त 1967